अध्याय - ८

साठोत्तरी उपन्यास : परिवेश

पुर्ववर्ती विवेचन में निर्दिष्ट किया जा चुका है कि परिवेश या वातावरण उपन्यास में विश्वसनीय सामाजिक वा ऐतिहासिक सन्दर्भ की सृष्टि कर वास्तविकता के निर्माण में अपना योग देता है। एक प्रकार के परिवेश में जो घटना या चरित्र अवास्तविक लगते हैं, परिवेश के बदलते ही वे सच्चे सिद्ध हो सकते हैं। आज की नायिका से हम 'मैला हुआ जू मारिया' की आशा नहीं रख सकते, पीठ दिखाकर भाग आनेवाले पति की ~~चतुरता~~ चतुरता के लिए कदाचित् वह उसकी पीठ भी ठोंक सकती है। 'प्राणनाथ', 'स्वामी', 'आर्यपुत्र' कहनेवाली तथा अपने पति का नाम अपने मुंह से कभी न लेने वाली नारियां अब पतियों को 'तूकार' में बुलाती हैं और उनके नामसे भी उन्हें कोई परहेज नहीं है। 'अन्धेरे बन्द कमरे' की नीलिमा अपने पति हरबंस को 'हबी' कहकर बुलाती है।[१] 'मछली मरी हुई' का डा० रघुवंश निर्मल पद्मावत द्वारा अपनी बेटी प्रिया पर बलात्कार होने पर संतोष-लाभ करता है क्योंकि इससे दोनों की असाधारणता समाप्त हो जाएगी ऐसा उनका विश्वास है। उक्त दोनों उदाहरणों को यदि उनके परिवेश से काट दिया जाय तो नितान्त अवास्तविक-से जान पड़ेंगे। तात्पर्य यह कि परिवेश उपन्यास में 'फ्रेमवर्क' का कार्य करता है।

परिवेश का तात्पर्य देश और काल दोनों से है। देशगत या स्थानगत परिवेश में किसी स्थल-विशेष का वर्णन होता है। गांव, नगर, प्रान्त, देश या विदेश के वातावरण को उसकी समूची भौगोलिक सामाजिक विशेषताओं के साथ इसमें चित्रित किया जाता है। कालगत परिवेश में किसी काल या समय-विशेष के जीवन को उसके समष्टि रूप में पकड़ने की चेष्टा होती है। ऐतिहासिक, समसामयिक और निकट अतीत के परिवेश को इसके अन्तर्गत लिया जा सकता है। भविष्य के परिवेश को भी उपन्यास का विषय बनाया जा सकता है किन्तु हिन्दी में अभी ज्यार्ज आरवेल के '१९८४' जैसे उपन्यास की रचना नहीं हुई है।

---

१. 'अन्धेरे बन्द कमरे' : पृ० ३६।

<u>स्थानगत या भौगोलिक परिवेश :</u> निर्मल वर्मा के ' वे दिन ', महेन्द्र भल्ला के ' दूसरी तरफ ', तथा अज्ञेय के ' अपने अपने अजनबी ' में विदेशी परिवेश को लिया गया है। ' मछली मरी हुई ', ' अन्धेरे बन्द कमरे ', ' रुकोगी नहीं राधिका ? ' प्रभृति उपन्यासों में भी विदेशी वातावरण का आंशिक आलेखन हुआ है जिस पर आगे प्रसंगानुसार विचार किया जाएगा।

' पानी के प्राचीर ' ; ' जल टूटता हुआ ', ' सूखता हुआ तालाब ', ' आधा गांव ', ' अलग अलग वैतरणी ', ' धरती धन न अपना ', ' नदी फिर बह चली ', ' राग दरबारी ' , जुलूस ' प्रभृति उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश को अंकित किया गया है। ' सांप और सीढ़ी ' में बस्तर जिले के वन-प्रदेश में हाई-वे पर आये हुए एक होटल तथा उसके आसपास के गांवों के परिवेश को लिया है। 'मणि मधुकर के ' सफेद मेमने ' में राजस्थान के बाड़मेर जिले की सुदूरवर्ती रेगिस्तानी ढाणियों (गांवों) को लिया गया है। निर्मल वर्मा के ' लाल टीन की छत ' में भारत के ही) बरफ से आच्छादित पहाड़ी प्रदेश के निर्जनता के दर्शन होते हैं।

' काला जल ', ' उग्रतारा ', ' एक कहानी अन्तहीन ', प्रभृति उपन्यासों में कस्बाई वातावरण मिलता है तो ' अन्तराल ', ' तीसरा ' आदमी ', ' भीतर का घाव ', ' टेराकोटा ', ' एक टूटा हुआ आदमी ', ' तमस ' प्रभृति उपन्यासों में ग्रामीण, कस्बाई एवं महानगरीय जीवन का सम्मिश्रण मिलता है। रामकुमार भ्रमर का ' कांच घर ' महाराष्ट्र के लोकनाट्य ' तमाशा ' की वस्तु पर आधारित उपन्यास है। अत: उसका परिवेश महाराष्ट्र के छोटे-बड़े गांव और नगर हैं। भीष्म साहनी के 'तमस ' में पंजाब के कुछ सीमावर्ती गांवों को लिया गया है।

कमलेश्वर ~~वि~~ के ' डाक बंगला ' की इरा कश्मीर-यात्रा के दौरान अपनी दास्तान अपने एक सहयात्री तिलक को सुनाती है। अत: उसका परिवेश बिखरा हुआ है। उसमें कश्मीर की रंगीन वादियां, ग्लेसियर्स, जानलेवा पहाड़ियां, दिल्ली का महानगरीय परिवेश अ~~न्दि-दृष्टिगत~~तथा आसाम के पहाड़ी वन-प्रदेश और आदिवासी परिवेश आदि दृष्टिगत होते हैं। कमलेश्वर के ही उपन्यास ' आगामी अतीत ' में दार्जिलिंग, सिलीगुड़ी, कार्सियांग के भौगोलिक परिवेश को लिया गया है। शिवानी के उपन्यास ' कृष्णकली में अल्मोड़ा, मसूरी, कलकत्ता, इलाहाबाद आदि

स्थानों के परिवेश को चित्रित किया गया है। गिरिराज किशोर के उपन्यास `यात्राएं` में मकरी के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण लेखक ने किया है।

`अन्धेरे बन्द कमरे`, `प्रश्न और मरीचिका`, `टेराकोटा`, `एक पंखड़ी की तेज़ धार`, `सीमाएं टूटती हैं`, `प्रेम अपवित्र नदी` (दिल्ली) : `अन्तराल`, `अठारह सूरज के पौधे`, `प्रश्न और मरीचिका` (बम्बई) : `महानगर की मीता`, `मछली मरी हुई`, `एक टूटा हुआ आदमी` (कलकत्ता) प्रभृति उपन्यासों में महानगरीय जीवन के परिवेश को चित्रित किया गया है। `मुरदाघर` उपन्यास भी महानगरीय परिवेश से सम्बन्धित है किन्तु वह पूरे परिवेश के स्थान पर वर्ग-विशेष के जीवन के दस्तावेज के रूप में प्रस्तुत हुआ है।

<u>काल गत परिवेश :</u> आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यास `चारु-चन्द्रलेख` में बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी तो उनके दूसरे उपन्यास पुनर्नवा` में तीसरी चौथी शताब्दी के भारत की ऐतिहासिक परिस्थितियों का चित्रण उपलब्ध होता है। उनके नवीनतम उपन्यास `अनामदास का पोथा` में उपनिषद्कालीन परिवेश के अनुशीलन का अभिप्राय है। नागरजी के मानस का हंस` में मध्यकालीन परिस्थितियों को तो राकुमार भ्रमर के उपन्यास `फौलाद का आदमी` में १८५७ के स्वाधीनता संग्राम के परिवेश को लिया गया है। लक्ष्मीनारायण लाल कृत `प्रेम अपवित्र नदी` में स्वाधीनता-संग्राम से लेकर आधुनिक काल तक की घटनाओं को चित्रित किया गया है। `भगवतीचरण वर्मा के `प्रश्न और मरीचिका` में सन् १९४७ से लेकर सन् १९६२ तक की घटनाओं का लेखा-जोखा मिलता है। शमशेर सिंह नरूला के उपन्यास` एक पंखड़ी की तेज़ धार` में भारत-विभाजन के समय की परिस्थितियां, गांधीजी की हत्या तथा साम्प्रदायिक दंगे प्रभृति का जीवन्त चित्रण हुआ है तो भीष्म साहनी के `तमस` में स्वाधीनता-पूर्व के साम्प्रदायिक दंगों का चित्रण उपलब्ध होता है। साम्प्रदायिक दंगों का वर्णन `प्रश्न और मरीचिका` तथा `प्रेम अपवित्र नदी` में भी उपलब्ध होता है, परन्तु यशपाल कृत` झूठा सच` में जो उसका लोमहर्षक रूप मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

`जल टूटता हुआ`, `अलग अलग वैतरणी`, `राग दरबारी` प्रभृति उपन्यासों में स्वातन्त्र्योत्तर काल के ग्रामीण परिवेश को उजागर किया गया

है। परन्तु यहां यह ध्यातव्य रहे कि इन उपन्यासों में निरूपित ग्रामीण परिवेश काल-विशेष के सन्दर्भ में ही आया है। 'आधा गांव' जमींदारी प्रथा के उन्मूलन तथा भारत-विभाजन की भावी विभीषिकाओं को गहराई से अंकित करता है। शानी के 'काला जल' में दो-तीन पीढ़ियों की कथा है, अत: उसका काल-फलक स्वाधीनता-पूर्व के कुछ वर्षों से लेकर आधुनिक काल तक विस्तृत है। 'दिल एक सादा कागज़' में भारत-पाकिस्तान के विभाजन से लेकर बांगला देश के अस्तित्व में आने तक की घटनाओं को लेखक ने समेटा है। रेणु के 'जुलूस' तथा जगदीशचन्द्र के 'एक मुंठी कांकर' में शरणार्थी समस्या को निरूपित किया गया है। नागार्जुन के 'उग्रतारा' तथा 'इमरतिया' में भी स्वातन्त्र्योत्तर ग्रामीण परिवेश को लिया गया है। शेष उपन्यासों में प्राय: समसामयिक बोध मिलता है।

ऊपर देशगत एवं कालगत परिवेश के स्थूल या बाह्य ढांचा प्रस्तुत किया गया है। अब अध्ययनार्थ चुने गये उपन्यासों के आधार पर परिवेश के सूक्ष्म ब्यौरों का विस्तारपूर्वक अध्ययन प्रस्तुत है।

(क) ऐतिहासिक परिवेश : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रणीत 'चारु-चन्द्रलेख' १२ वीं-१३ वीं शती के भारत के व्यक्ति और समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। इसमें लेखक ने उससमय के भारत की परिस्थितियों का आलेखन करते हुए बताया है कि जब विदेशी आक्रमणों से भारतवर्ष पादाक्रान्त हो रहा था, तब देश की प्राण-शक्ति मन्त्र-तन्त्र, भूत-वैताल, डाकिनी-शाकिनी, ऋद्धि-सिद्धि, सुन्दरी साधना, मोहन और उच्चाटन में लोप हो रही थी। उपन्यास का एक तपस्वी पात्र एक स्थान पर कहता है : "सिद्धियों के पीछे पागल होने का यही परिणाम हो सकता था। आज मैं समूचे मगध में एक भी मनुष्य ऐसा नहीं देख रहा हूँ जो हमारी सहायता कर सके। साधारण प्रजा हमें सिद्ध समझती रही है। वह श्रद्धा से नहीं भय से हमारी पूजा करती रही है। आज आततायी के खड्गाघात से सिद्धियों का यह सारा खिलवाड़ टूटकर गिर गया है। जिसका दिखावा करके हम पूजा पाते थे, उसके ऐसे दयनीय पतन को देखकर यहां की प्रजा केवल हंसेगी।... आज भी हमारे विहार के ढोंगी साधक मन्त्रबल से तुर्कों की सेना उड़ा देने की गप्पों पर विश्वास करते हैं। और फिर जले पर नमक यह कि इसिपत्तन (सारनाथ) के

भयंकर पतन की बात सुनकर कोई पिपल की डाल पर डाकिनी बैठाकर हांकने के लिए हिमालय की ओर चल पड़ा है तो कोई तूंबे के अभिमन्त्रित जल से प्रलयपूर का दृश्य उपस्थित करने के लिए सारखण्ड के भैरव की ओर निकल पड़ा है।"[1] इसी सन्दर्भ में गुरु गोरक्षनाथ अमोघवज्र नामक वज्रयानी सिद्ध को चतुश्चन्द्र, पंच पवित्र और पंच मकार की साधना की निर्वीर्यता और व्यर्थता बताते हुए सही रास्ते की ओर लौटने का परामर्श देते हैं। वे उसे फटकारते हुए कहते हैं: "अब भी तुम इस घपले में पड़े हो अमोघ ? हमारी आंखों के सामने गजनवी से साकल (सियालकोट) तक के समस्त विहार और रत्न-स्तूप विध्वस्त हो गये, सोमेश्वर तीर्थ लुट गया, इसिपत्तन में ईंट-से-ईंट बज गयी। नालन्दा और ओदन्तपुरी अब भी जल रही हैं और तुम्हारी यह जादूगरी की साधना अब भी अव्याहत गति से चल रही है ?"[2] इसमें तत्कालीन परिस्थितियों का स्थिति-बोध तो है ही, द्विवेदी जी की आधुनिक दृष्टि का भी परिचय प्राप्त होता है।

उपन्यास में उस समय की अनेक साधनाओं तथा मान्यताओं के सन्दर्भ भी आये हैं। उस समय की प्रचलित तान्त्रिक साधनाओं में कुमारी साधना का विशिष्ट महत्व है। प्रथम वर्ष की कन्या से लेकर षोडश वर्ष तक की कुमारियों के अलग अलग नाम हैं -- सन्ध्या, सरस्वती, त्रिधामूर्ति, कालिका, सुभगा, उमा, मालिनी, कुब्जिका, कलसन्दर्भा, अपराजिता, रुद्राणी, भैरवी, महालक्ष्मी, पीठनायिका, क्षेत्रज्ञा और अम्बिका। इनकी पूजा यदि ठीक ढंग से की जाय तो समस्त सिद्धियां प्राप्त होती हैं।[3]

प्राचीन काल में सामुद्रिक विद्या के आधार पर व्यक्ति के गुण-दोषों का विवेचन होता था। विद्याधर भट्ट सीदी मौला को महासिद्ध मानते हैं क्योंकि उनकी दसों उंगलियों में चक्र के लाञ्छन हैं। उनके पैरों में चक्र और अंकुश हैं। पैरों के मध्य भाग में मत्स्यरेखा है और दाहिने पैर में त्रिशूल का लाञ्छन है।[4] सब लोग समझते थे कि सीदी मौला संज्ञाशून्य हैं, किन्तु वे संज्ञाशून्य नहीं थे उसकी परीक्षा विद्याधर कर लेते हैं क्योंकि उनकी चक्षुर्गमा नाड़ियां बिलकुल स्वस्थ थीं।[5]

---

१. 'चारु-चन्द्रलेख' : पृ० १३४। २. वही : पृ० १४०-१४१। ३. देखिए : वही : पृ० १२४-१२५ तथा ३७४-३७५। ४. देखिए : वही : पृ० २०९-२१०।
५. देखिए : वही : पृ० २१०।

चन्द्रलेखा को देखते ही नागनाथ बता देते हैं कि वह कोई सामान्य ऋषिवल-किशोरिका नहीं है क्योंकि उन्नत ललाट, कुंचित केश-राशि, दक्षिणावर्त रोम-राजि, तिलपुष्प के समान नासिका, घनी भृकुटियों के नीचे सघन अराल रेखा यह सब लक्षण उसे राजकुमारी ही सिद्ध करते हैं।[१]

इसी उपन्यास में अमोघभैरव तत्कालीन रणनीति की आलोचना करते हुए मौल, भृतक, मित्र तथा श्रेणी सेना की निरर्थकता को स्पष्ट करते हैं।[२] वंश-परम्परा से प्राप्त धरती का उपभोग करने वाले सामन्तों द्वारा संगठित सेना को मौल सेना कहा जाता था। वेतन भोगी सेना को भृतक सेना ~~कहा-जाता-था~~ कहते थे। किसी ज़माने में पड़ोसी को 'अरि' कहा जाता था और 'अरि' के 'अरि' को मित्र समझते हुए उसकी सेना को मित्रसेना नाम दिया जाता था। बड़े सेठों या नगर सेठों द्वारा पालित सेना, जो संकट समय में राजा के भी काम आती थी, को श्रेणी सेना कहते थे। स्थानीय जंगली जातियों या आदिवासियों की सेना को अटवी सेना कहते थे। शकारि विक्रमादित्य भिल्लों और मुसहरों की अटवी सेना के बल पर ही शकों को खदेड़ने में सफल हुए थे।

इसमें लेखक ने तत्कालीन समाज में प्रचलित अनेक मान्यताओं तथा अन्धविश्वासों का भी उल्लेख किया है। रात्रि के अन्तिम प्रहर में स्वस्थ होकर जब कुक्कुट तारस्वर में बोलता है तो उसे राजा के लिए परम कल्याणकारी समझा जाता है।[३] शिवाओं या श्रृगालियों द्वारा भविष्य के लिए संकेत प्राप्त करनेवाली नैमित्तिक विधि का भी एक स्थान पर उल्लेख मिलता है। अंगन्यास, प्राणायाम, जप आदि की विशेष विधियों के यथानियम सम्पन्न होने के पश्चात् साधक मद्य और मांस की बलि निर्जन में देता है और 'काली-काली' कहकर पुकारता है। कहा जाता है कि उस समय महामाया स्वयं श्रृगाली ~~सनकर~~ के रूप में उपस्थित होती है। निमित्तज्ञ उस समय छिपकर शिवा की गति-विधि का निरीक्षण करते रहते हैं। यदि श्रृगाली मांस न ग्रहण करे तो अशुभ माना जाता है। ग्रहण करके यदि वह ईशान कोण की ओर मुंह करके रोदन करती है तो शुभ माना जाता है।[४] यह और ऐसी अनेक मान्यताओं के निरूपण के द्वारा लेखक ने उस युग के परिवेश को मूर्तिमन्त स्वरूप प्रदान किया है।

---

१. द्रष्टव्य : 'चारु-चन्द्रलेख' : पृ० २०-२१। २. द्रष्टव्य : वही : पृ० ३४६।
३. वही : पृ० ३३३। ४. वही : पृ० ३०७।

उपन्यास की भाषा तथा उसमें यत्र-तत्र प्रयुक्त संस्कृत-प्राकृत के अनेक उद्धरण भी उस युग के भारतीय परिवेश के ~~निमा~~- निर्माण में पोषक सिद्ध हुए हैं ।

'पुनर्नवा' चौथी शताब्दी की घटनाओं पर आधारित उपन्यास है । अत: उसमें गुप्तकालीन भारतीय परिवेश को चित्रित करने का सफल प्रयत्न लेखक ने किया है । इसमें तत्कालीन न्याय-पद्धति का विवरण भी प्राप्त होता है । पेचीदा व्यवहारों (मुकदमों) में प्राविवाक की राय ली जाती थी । शक प्रभावित क्षेत्रों में में -- मथुरा, उज्जयिनी आदि -- में परामर्शदाता को प्राश्निक कहा जाता था । प्राविवाक और प्राश्निक दोनों का काम एक ही था । वे लोग वादी-प्रतिवादी और साक्षियों से प्रश्न करके सच्चाई का पता लगाते थे । अन्तर यह था कि प्रा-विवाक स्थायी धर्माधिकारी होता था, जबकि प्राश्निक मामले की ~~प्रकृपल~~ प्रकृति के अनुसार अस्थायी रूप से नियुक्त किया जाता था । प्राविवाक विद्वान्, धर्मशास्त्रज्ञ, निष्पक्ष तथा धर्मप्रेमी हुआ करते थे और राजा यहां तक कि सम्राट् तक उनका सम्मान करते थे ।[१] हलद्वीप के प्राविवाक आचार्यपाद पुरगोभिल निर्भीकतापूर्वक कहते हैं कि गोपाल आर्यक तथा चन्द्रा विषयक सम्राट् का निर्णय एकान्त निर्णय होने के कारण अमान्य है । उनका यह कथन उस समय प्रचलित न्याय की स्वतन्त्रता को घोषित करता है । आचार्य पुरगोभिल के शब्दों में " धर्मत: राजा या महा-राजाधिराज अकेले में बैठकर कोई निर्णय नहीं ले सकते । धर्मावतार, पितामह और शुक्राचार्य जैसे ~~धर्मशों के~~ धर्मज्ञों ने यह कठोर निर्देश दिया है कि राजा या न्यायाधीश या मन्त्री किसी को भी न तो अकेले में विवाद सुनना चाहिए और न तो निर्णय लेना चाहिए । निर्णायक को पांच दोषों से बचना चाहिए --राग, लोभ, भय, द्वेष और एकान्त में वादियों की बातें सुनना ।"[२]

इस उपन्यास में तत्कालीन ~~संचार~~ संवाद संचार-व्यवस्था का भी उल्लेख एक स्थान पर आता है । इसके लिए नदी के प्रवाह एवं घोड़ों का प्रयोग होता था । शक और कुषाण नरपतियों ने रेगिस्तानी भूमि में संवाद-संचार के लिए ऊंटों का प्रयोग शुरू किया था । गुप्त सम्राट् प्रचलित व्यवहारों व नियमों

---

१. द्रष्टव्य : 'चारु-चन्द्रलेख' : पृ० १६७ २. वही : पृ० १६६ ।

के पुनर्वीक्षण पर विश्वास करते थे और आवश्यकतानुसार नवीन व्यवस्था को मान्यता प्रदान करते थे। अत: सम्राट् समुद्रगुप्त ने भी उज्जयिनी-मथुरा में संवादों के आदान-प्रदान हेतु 'साड़नी' की व्यवस्था की थी।[1] उस समय उत्तरापथ में हौत्र और दक्षिणापथ में शालि नामक घोड़ों का प्रचलन था। इन दोनों श्रेणी के घोड़ों की देखरेख और संवर्द्धन के लिए उन दिनों 'शालि-हौत्र' नामक शास्त्र विशेष सम्मानित था। युद्ध के समय उत्तरापथ में हौत्र-जातीय घोड़े ~~दूर-दूर-तक-समाचार~~ युद्ध-भूमि में लगाये जाते थे और शालि-जातीय घोड़े दूर-दूर तक समाचार पहुंचाने के काम आते थे। सम्राट् समुद्रगुप्त संवाद की संचार व्यवस्था के लिए इन घोड़ों की उपयोगिता पर भरोसा रखते थे। पर मथुरा के आगे जो मरुभूमि थी उसमें इन घोड़ों की उपयोगिता उन्हें संदेहास्पद जान पड़ी थी।[2]

एक स्थान से दूसरे स्थान तक त्वरित गति से संदेश संक्रमित करने के लिए उन दिनों क्रोश पद्धति प्रचलित थी। 'क्रोश' चिल्लाकर आवाज़ देने को कहते हैं। अत: जितनी दूर तक आवाज़ स्पष्ट रूप से पहुंच जाती थी उतनी दूरी को भी क्रोश कहा जाता था। प्राकृत-जन में यह शब्द घिस-घिसाकर 'कोस' बन गया था। उज्जयिनी में प्रत्येक कोस पर एक दण्डधर वाहिनी का अड्डा रहता था, जहां कुछ प्रहरी भी नियुक्त रहते थे। जो साधारणत: नागरिकों को समय बताने के लिए घण्टा बजाया करते थे। घण्टे पर प्रहार करने के कारण ही ये लोग 'प्रहरी' कहे जाते थे।[3]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की नवीनतम औपन्यासिक कृति 'अनामदास का पोथा : अथ रैक्व आख्यान' में तापस कुमार रैक्व एवं राजा जानश्रुति की पुत्री जाबाला की कथा उपनिषद्कालीन पृष्ठभूमि में रखी गयी है। आलोच्यकाल के अन्य उल्लेखनीय ऐतिहासिक उपन्यासों में वृन्दावनलाल वर्मा कृत 'रामगढ़ की रानी' तथा राम कुमार भ्रमर द्वारा लिखित 'फौलाद का आदमी' में १८५७ की क्रान्ति के परिवेश को चित्रित किया गया है। अमृतलाल नागर द्वारा विरचित 'मानस का हंस' में तुलसीदास की जीवनी को चित्रित किया गया है, अत: हिन्दी साहित्य के मध्यकाल के परिवेश का समुचित आकलन उसमें हुआ है।

---

१. द्रष्टव्य : 'चारु-चन्द्रलेख' : पृ० २३७। २. द्रष्टव्य : वही : पृ० २३६।
३. द्रष्टव्य : वही : पृ० १५५।

आनन्दप्रकाश जैन कृत ` कुण्डाल की आंखें ` तथा शिव सागर मिश्र कृत ` मगध की जय ` में मौर्यकालीन भारत के ऐतिहासिक परिवेश को चित्रित करने के प्रयास हुए हैं।

इन उपन्यासों में अंकित ऐतिहासिक परिवेश प्राय: तीन प्रकार का है। प्रथमत: सांस्कृतिक परिवेश जो कि वस्तुत: हजारीप्रसाद द्विवेदीजी के उपन्यासों में प्राप्त होता है। उनमें लेखक की दृष्टि ऐतिहासिक घटना-क्रम के स्थान पर युगीन रीति-नीति, रुचि-अभिरुचि, जीवन-क्रम एवं व्यवस्था पर अधिक टिकी है। द्वितीयत: वृन्दावनलाल वर्मा, आनन्दप्रकाश जैन, रामकुमार भ्रमर तथा शिवसागर मिश्र के उपन्यासों में ऐतिहासिक घटनाओं की योजना द्वारा प्राचीन गौरवमय पृष्ठों को उजागर किया गया है, यद्यपि इन में थोड़ा-बहुत अन्तर मिलता है। वृन्दावनलाल वर्मा में ऐतिहासिकता के साथ-साथ आंचलिक विशेषताओं का सुन्दर मिश्रण हुआ है। ` मानस का हंस ` में ऐतिहासिक परिवेश की योजना जीवनी के अछूते पन्नों को विश्वसनीयता में ढालने के उद्देश्य से प्रेरित जान पड़ती है। सामान्यत: मनुष्य की सहज वृत्तियों को मध्ययुगीन परिवेश के रंग से रंजित करने का लेखक का प्रयास उनकी निजी चेतना है। साथ ही जनश्रुतियों को वर्णना के माध्यम से परिवेशपरक बनाया गया है।

(ख) विदेशी परिवेश : ` वे दिन `, ` अपने अपने अजनबी ` तथा ` दूसरी तरफ ` प्रभृति उपन्यासों में विदेशी परिवेश उपलब्ध होता है। पूर्ववर्ती विवेचन में निर्दिष्ट किया जा चुका है कि ` अपने अपने अजनबी ` में जर्मनी के बरफाच्छादित काठघर में सैलानी योके तथा बुढ़िया सेल्मा को उपस्थित कर अज्ञेयजी ने पाश्चात्य-चिन्ता में प्रबोधित अस्तित्ववादी दर्शन के मृत्युबोध का साक्षात्कार करवाया है।

` वे दिन ` में निर्मल वर्मा ने चेकोस्लोवाकिया के प्राग शहर (सिटी आफ ड्रिम्स [१]) के परिवेश को चित्रित किया है। उसकी आस्ट्रियन नायिका रायना टूरिस्ट की हैसियत से प्राग आयी है और उसका अनाम नायक प्राग में छात्र-जीवन व्यतीत करते हुए छुट्टियों में टूरिस्टों के लिए इन्टरप्रेटर का काम करता है, अत: प्राग के ` इजेरा `, ` पेलिकॉन `, ` रिल्के रेन्देवू [२] `, (जिसके बारे में प्रसिद्ध है कि रिल्के ने वहां बैठकर अनेक कविताएं लिखी थीं।) ` वेन्सलैस स्क्वायर `,

---

१. देखिए : ` वे दिन ` : पृ० २३ । २. वही : पृ० ५४ ।

'लारेन्तो चर्च', 'सेन्ट ज्यार्ज स्क्वायर' आदि स्थानों का वर्णन आना स्वाभाविक है। स्वयं निर्मल वर्मा वहां रह चुके हैं, अतः वर्णन में यथार्थता के दर्शन होते हैं।

ठण्डा मुल्क होने के कारण यूरोप में मद्यपान चाय-काफी की भांति सामान्य है। 'वे दिन' में ही करीब एक दर्जन शराबों के नाम मिल सकते हैं --, जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं -- वोडका, स्लिवोवित्से, बियर, शैरी, कोन्याक, स्लोवाकियन, ड्राई मार्टिनी, तोकाई आदि। कहीं कहीं उनकी विशेषताएं भी वर्णित हैं, यथा --" कोन्याक अद्भुत चीज़ है। और चीज़ें प्यास बुझाती हैं, कोन्याक उससे खेलती है और वह खलती नहीं है। वह खोलती है... दिन भर के जमा किए हुए शब्दों को।"[1]

नायक-नायिका की प्राग शहर की सहयात्रा के कुछ दिनों से हम यूरोपीय जीवन की उन्मुक्तता, खुलापन और साथ ही टूटते-महराते मानवीय सम्बन्धों के कारण रिसती-पिसती कुछ वेदना, निराशा, कुण्ठा, एवं संत्रास के भी दर्शन होते हैं। द्वितीय महायुद्ध ने वहां के सामान्य जीवन में महान अनास्था के भाव उत्पन्न किये हैं। रायना, जाक, फ्रान्ज़, मारिया, टी० टी० तथा स्वयं नायक इस भाव-बोध से आक्रान्त हैं। टी० टी० एक स्थान पर अपनी मां के पुनर्विवाह का जिक्र बड़े साहजिक ढंग से करता है।[2] जबकि 'रुकोगी नहीं राधिका ?' की राधिका उत्तरावस्था में पिता द्वारा विवाह कर लेने पर बौखला जाती है। इसी बात की ओर संकेत करते हुए डैन कहता है कि राधिका के इस ~~का ऐसा~~ व्यवहार के उत्स में उसका भारतीय परिवेश ही है।[3] सूर्यबाला के उपन्यास 'मेरे सन्धि पत्र' में युवा पुत्री रिन्की का विमाता के प्रति कटु रुख भी भारतीय परिवेश के ही कारण है। वहां के परिवेश में यह किंचित भी असम्भव, आश्चर्यजनक या अनौचित्यपूर्ण नहीं है। यूरोप में बहुत से बूढ़े स्त्री-पुरुष विवाह की ग्रन्थि में इसलिए बंधते हैं कि वहां के एकान्तिक-~~जीवन-में~~ सामाजिक परिवेश में घुटन से बचने का यही एक मात्र उपाय है। भौतिकता की दौड़ में मानवीय सम्बन्धों में दुराव आ रहा है। अभी कुछ वर्ष पूर्व अखबारों में एक घटना प्रसिद्ध हुई थी कि यूरोप में एक व्यक्ति ने अपनी सारी सम्पत्ति एक डाकिया के नाम 'विल' कर दी थी।, क्योंकि रिटायर होने

---

१. 'वे दिन' : पृ० ६३। २. देखिए : वही : पृ० १०७। ३. देखिए : 'रुकोगी नहीं राधिका ?' : पृ० ३३।

के बाद शेष दुनिया से सम्पर्क केवल उसी डाकिया के कारण रह सका था। डाकिया ही एक मात्र व्यक्ति था जो रिटायर होने से मृत्यु होने तक उनसे मिलता रहा जबकि उन्हें पुत्र, पुत्रियाँ और प्रपौत्र भी थे। जहां सामाजिक जीवन की यह स्थिति रह गयी हो वहां सन्त्रास, पीड़ा तथा घुटन का होना स्वाभाविक है।

रायना और जाक तलाकशुदा पति-पत्नी हैं। उन दोनों की सन्तान मीता (लड़का) का जीवन दोनों में बंटा हुआ है। छुट्टियों में वह कभी जाक के पास रहता है तो कभी रायना के पास।[1] परन्तु दोनों में एक सन्तुलित समझौता होने के कारण उसकी स्थिति 'आपका बण्टी' के बण्टी से बेहतर है। 'एकाकी नहीं राधिका ?' का डैन तथा उसकी पत्नी के बीच भी बच्चेको लेकर ऐसा ही समझौता पाया जाता है।[2] डैन और उसकी पत्नी अलग-अलग रहते हैं क्योंकि डैन की पत्नी को भारत कभी रास नहीं आया। दूसरे इस बीच उसकी भेंट एक हंगेरियन से से हो गयी थी। हंगेरियन अमरीका आना चाहता था और इसके लिए अमरीकन पत्नी वरदान सिद्ध हो सकती थी।[3] तात्पर्य कि शादी-व्याह के पीछे भी व्यावसायिक सूझ-बूझ काम करती है।

यूरोपीय देशों में तथा अमरीका में 'डेटिंग' की प्रथा प्रचलित है। वहां युवा लड़के-लड़कियों का मिलना (शारीरिक दृष्टि से भी) स्वाभाविक माना जाता है। वहां के छात्रावासों में भी आठ बजे तक अपनी 'डेट' को लाने की अनुमती दी जाती है।[4] 'वे दिन' का नायक जिस छात्रावास में रहता है वहां के छात्र प्राय: अनेक दिनों तक स्नान नहीं करते। वे स्नान तभी करते हैं जब उन्हें अपनी शाम 'डेट' के साथ बितानी होती है। अत: जब कोई स्नान करने जाता है तब अन्य लोग एक रहस्यमय मुस्कान से उसे देखते हैं।[5]

स्त्री-स्वातन्त्र्य की हिमायत करनेवाले पश्चिमी देशों में कई बार लगता है कि स्त्री पुरुष की काम-दोरी द्वारा परिचालित पुतली मात्र है। उनकी सारी स्वतन्त्रता भी नारी-शरीर को पाने का उपाय मात्र है। अत: वहां की

---

१. "पिछले साल छुट्टियों में वह जाक के संग था। उसी के साथ युगोस्लाविया गया था। अब पिछले कुछ महीनों से मेरे साथ रह रहा है।" : 'वे दिन' : पृ० ८५। २. 'एकाकी नहीं राधिका ?' : पृ० ३३। ३. 'वे दिन' : पृ० २४। ४. वही : पृ० १५० । ५. वही : पृ० १५०।

स्त्रियों में सौंदर्य के लिए हमेशा एक स्पर्द्धा भाव मिलता है। 'ब्यूटी सेलून' तथा अनेक सौन्दर्य-प्रसाधनों का उपयोग वहां के नारी-जीवन का एक अभिन्न अंग होता जा रहा है। 'वे दिन' की टूरिस्ट एजेन्सी की टाइपिस्ट इसका उदाहरण है।[1] यही कारण है कि इधर के नारियों द्वारा छिड़े गये नारी-मुक्ति आन्दोलनों में स्त्रियों की इस मानसिक-दासता की चिन्दी चिन्दी उड़ायी गयी है। सामन्तकालीन नारी अपने प्रियतम के लिए सजती थी, तो आधुनिक नारी अपनी अस्तित्व-रक्षा हेतु सजती है।

यूरोपीय जीवन के कुछ अन्य पहलुओं पर भी इन उपन्यासों में अनेक जानकारियां उपलब्ध होती हैं। 'एकोंगी नहीं राधिका ?' में जहां वहां की 'गोली प्रधान' ज़िन्दगी पर भी व्यंग्य किया गया है। नींद की गोली से जागने पर एक उदासी, आलस्य और अनमनापन बना रहता है। उसे दूर करने के लिए एक पीली गोली लेनी पड़ती है, जिससे प्रफुल्लता लौट आती है। ज़िन्दगी के सुख-दु:ख भी गोलियों द्वारा परिचालित होते हैं।[2]

नाइट क्लबों, कैबरे नृत्यों, काक्टेल पार्टियों तथा नाइट-मैयरों की यत्र-तत्र चर्चा मिलती है। मोहन राकेश के 'अन्धेरे बन्द कमरे' में उसका नायक हरबंस योरोप जाते समय हुए रास्ते में पोर्ट सईद में एक नाइट-मैयर देखता है। वह नाइट-मैयर एक दु:स्वप्न जैसा था जिसमें एक हट्टा-कट्टा नीग्रो दस-बारह साल की एक चीनी या जापानी लड़की पर बलात्कार करता है। हरबंस उसका वर्णन करते हुए लिखता है: मैं सच कहता हूं कि तब से अब तक उस दृश्य की याद से मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मुझे आंखों से देखकर भी विश्वास नहीं आया कि सचमुच रंगमंच पर ऐसा अनुभव-भ अभिनय भी हो सकता है, और लोगों का इससे मनोरंजन भी होता है।[3]

राजकमल चौधरी कृत 'मछली मरी हुई' में भी पश्चिमी परिवेश की कुछ झलकियां मिलती हैं। इसकी नायिका कल्याणी ड्रम और आर्केडियन की

---

१. 'उसके उजले ब्लौंड बाल थे, और मैं जब कभी उन्हें देखता, मुझे विश्वास न होता कि उसका उजला रंग स्वाभाविक नहीं है। मुझे विश्वास नहीं होता कि हर पन्द्रहवें दिन वह उन्हें रंगवाने जाती होगी।' : 'वे दिन' : पृ० ६८।

२. 'एकोंगी नहीं राधिका ?' : पृ० ४४६। ३. 'अन्धेरे बन्द कमरे' : पृ० १६८।

वहशी धुनों तथा नीग्रो और जिप्सी संगीत पर सिल्वाना मैंगानो और सोफिया लॉरेन की तरह नाचने लगती है। लेखक ने ऐसी ही एक उत्तेजक धुन उद्धृत भी की है जिसमें माशूक को कहा गया है कि बिना शैंपेन की बनी हुई तेज़ शराब को पीए वह प्यार क्या करेगी।[1] ऐसे वातावरण में माडलिंग का काम करते-करते काल-गर्ल तथा 'ब्लू-फिल्मों' का काम उसकी ज़िन्दगी बन जाता है। साम्प्रतिक अमरीकी सभ्यता के कुछ प्रमुख अंग-उपांगों की एक लिस्ट उसने बनायी है: (१) नीली फिल्में, (२) जैज़ संगीत और नीग्रो लड़कियां, (३) डेल कार्नेगी, (४) टेनेसी विलियम्स के नाटक, (५) पीली अखबारनवीसी, (६) मैरेलिन मनरो, (७) ~~'पबे'~~ 'पब' और गन्दे कहवाघर, (८) कम्युनिज़्म का भय और (९) स्काई-स्क्रेपर्स।[2] यह लिस्ट प्रकारान्तर से अमरीकी परिवेश को भी उजागर करती है। यहां यह विशेष रूप से ध्यातव्य रहे कि अ~~मरीका जैसे सुपरफास्ट देश में लोगों की 'हाबी' और फैशन शीघ्रता से परिवर्तित होते रहते हैं, अतः~~ उपरिनिर्दिष्ट लिस्ट उपन्यास के रचनाकाल से पूर्व की है क्योंकि अमरीका जैसे सुपरफास्ट देश में लोगों की 'हाबी' ~~और~~ और फैशन शीघ्रता से परिवर्तित होते रहते हैं।

महेन्द्र भल्ला का उपन्यास 'दूसरी तरफ' रंगभेद की नीति पर लिखा गया हिन्दी का प्रथम उपन्यास है। उसका नायक 'केवल' आशा और उत्साह के साथ इंग्लैण्ड जाता है, परन्तु शीघ्र ही उसका मोहभंग हो जाता है। इन्सान से इन्सान की संज्ञा छीनकर उसे 'रंगीन' के खाने में बैठा देनेवाली क्रूर मनोवृत्ति के शिकार स्वयं महेन्द्र भल्ला भी हुए हैं, अतः उनका यह उपन्यास एक ~~म~~ प्रकार से उनकी आपबीती भी है। अपने मित्र कैलाश को लिखे एक पत्र में वह (केवल) रंगभेद की नीति की बड़ी तीव्र एवं कटु आलोचना करता है: 'रंगीन लोगों की हर बात की छानबीन होती है: वे कितना कमाते हैं, कितना बचाते हैं, कितना जमा करते हैं, कितना अपने देश भेजते हैं, ब्रितानी राष्ट्र को कितना फायदा ~~पहुं-~~ पहुंचाते हैं, कितना उससे लेते हैं, वे कितनी बार बीमार पड़ते हैं, स्वास्थ्य सेवा पर कितना बोझ डालते हैं, कितने बच्चे जनते हैं -- मतलब कि उनकी हर बात ऐसे जांची-परखी जाती है जैसे किसी खरीदनेवाली चीज़ की, या जैसे नीग्रो दासों की नीलामी

---

१. देखिए: 'मछली मरी हुई': पृ० ५६।

२. वही: पृ० ५२।

में नीग्रो युवा-युवतियाँ के अंग-अंग जांचे-परखे जाते हैं थे ।... एक व्यापारी दृष्टि से देखा जाय तो इसमें कुछ भी बुरा नहीं है । लेकिन ये लोग डींग मारते नहीं अघाते -- टैलीविज़न पर और अखबारों में (मैंने एक बार भी उस डींग का विरोध नहीं देखा) -- कि इन्सान की, मानव-जीवन की जितनी कद्र ये लोग, पश्चिमी लोग, (उनमें भी अंग्रेज़) करते हैं, उतनी और कोई नहीं करता । मगर ये लोग यह बताना भूल जाते हैं कि मानव-जीवन से, इन्सान से उनका मतलब सिर्फ गोरे जीवन और गोरे इन्सान से होता है ।... आजकल इन्होंने यह भी चला रखा है कि नीग्रो लोग जन्मजात घटिया होते हैं । इस बात के वैज्ञानिक सबूत दिये जा रहे हैं ।... अब लगता है कैलाश, कि यहां आकर अपने देश की पराधीनता की सदियां मुझे फिर से भोगनी पड़ेंगी और मैं आदमी से मानो जाति बनता जा रहा हूं ।"[1]

कुछ लोगों का यह खयाल होता है कि पश्चिम में जानेवाले लोग स्वर्गीय सुखों में ही आकण्ठ डूबे रहते हैं, परन्तु 'दूसरी तरफ़' या 'एकोगी नहीं राधिका ?' में ~~भ्रान्ति~~ इस भ्रान्ति को ध्वंसित किया गया है । राधिका वहां के कठोर विद्यार्थी जीवन की झांकी प्रस्तुत करते हुए एक हिन्दुस्तानी लड़की (नीना) से कहती है : "मगर वहां का विद्यार्थी जीवन भी आसान नहीं नीनाजी, वहां कम ही मम्मी-डैडी कालेज की पढ़ाई का खर्च देते हैं । मैंने ही पूरे ढाई साल सुबह नौकरी की और शाम को पढ़ा । खाली समय लायब्रेरी में बिताया, वहां मुफ़्त फिल्म या टैलीविज़न देखने का समय तो मुझे नहीं था ।"[2]

निष्कर्षत: कहा ~~जाता~~ जा सकता है कि जहां 'अज्ञेय के अपने अपने अजनबी' में पाश्चात्य दर्शन मिलता है, वहां अन्य उपान्यासों में वह जीवन मिलता है, जिसने उस दर्शन को जन्म दिया है ।

(३) राजनीतिक परिवेश : साम्प्रतिक समाज की प्रत्येक गति-विधि ~~रहती~~ राजनीति द्वारा परिचालित है, अत: उपन्यासों में उसका ~~प्रतिबिम्ब~~ प्रतिबिम्बित होना स्वाभाविक ही नहीं, प्रत्युत यथार्थ के निरूपण की दृष्टि से आवश्यक भी है ।

---

१. 'दूसरी तरफ़' : पृ० १९६-१९७-१९८ ।

२. 'एकोगी नहीं राधिका ?' : पृ० ७८ ।

तथापि 'प्रश्न और मरीचिका', 'सबहिं नचावत राम गोसाईं', 'आधा गाँव', 'तमस', 'एक पंखड़ी की तेज़ धार', 'शहीद और शोहदे', 'प्रेम अपवित्र नदी' प्रभृति उपन्यासों में राजनीतिक गति-विधियों का सविशेष उल्लेख हुआ है। यहाँ एक बात ध्यातव्य है कि प्रस्तुत शीर्षक के अन्तर्गत साठोत्तरी उपन्यासों में आये हुए राजनीतिक परिवेश को चित्रित करने का प्रयास हुआ है, केवल साठ के बाद के परिवेश को ही नहीं। वैसे कई उपन्यासों में साठोत्तरी चेतना भी आयी है।

'राग दरबारी' तथा 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' जैसे उपन्यासों में स्वातन्त्र्योत्तर काल में फैलते जाते भ्रष्टाचार एवं भाई-भतीजावाद को व्यंग्यात्मक स्तर पर उभारा है तो 'प्रश्न और मरीचिका' में स्वाधीनता-प्राप्ति से लेकर चीनी आक्रमण तक की घटनाओं को लिया गया है।

'प्रश्न और मरीचिका' में बताया गया है कि स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद राजनीति में जो आमूल परिवर्तन आना चाहिए वह नहीं आया। आज़ादी महज़ सत्ता का हस्तान्तरण (Transfer of Power) मात्र बनकर रह गयी। शासकीय मशीनरी में कोई परिवर्तन नहीं आया। जिन ~~अफ़सर~~- आई० सी० एस० अफ़सरों ने राष्ट्रवादियों को चनों की तरह भूँजा था अब उनसे कहा जाता था -- 'मिस्टर उपाध्याय। हमें देश का निर्माण करना है। यह हमारा सौभाग्य है कि हमें देवतास्वरूप पण्डित जवाहरलाल नेहरू का शासन मिला है -- पण्डित जवाहरलाल नेहरू महात्मा गांधी के मानस-पुत्र हैं। महात्मा गांधी ने जिस साधना और तपस्या का मार्ग दिखलाया है उस पर चलकर हम विश्व के अन्य ~~राष्ट्रों~~ राष्ट्रों का नेतृत्व प्राप्त कर सकते हैं। इस ओर मैं आप अधिकारियों के सक्रिय सहयोग की अपेक्षा करता हूं।'[१] देश को संगठित करके जहां सर्वहारा वर्ग के उत्कर्ष के लिए नये ढंग से कार्य होना चाहिए था, वहां उसके स्थान पर जवाहर-भक्ति और विश्व-नेतृत्व की बातें चल रही थीं।

राजनीति एक व्यवसाय बनती जा रही थी। उपन्यास का एक पात्र रामराज कहता है : 'भारतवर्ष स्वतन्त्र क्या हुआ वकालत का पेशा ही ठप हो गया है। जमींदारी तो जमींदारी-उन्मूलन में निकल गई, सत्तर बीघे

---

१. 'प्रश्न और मरीचिका' : पृ० ३६-४०।

खेती बची है.... लेकिन खेती में आजकल कुछ रक्खा नहीं है। उल्टे घर से देना पड़ता है। तो सिवा नेतागिरी के और किसी दूसरे पेशे में फायदा नहीं है।"[1] भारत सरकार के सेक्रेटरियट में ऊंचे पद पर विराजित जयराज उपाध्याय अपने भतीजे विधानाथ के राजनीति-प्रवेश पर कहते हैं: "अंग्रेजी में कहावत है कि लुच्चों और लफंगों के लिए ही यह राजनीत है। तो चलो हमारे घरमें भी एक विधायक बन रहा है।"[2]

और सचमुच में राजनीति ऐसे ही लोगों का अड्डा बनती जा रही है। इसका बड़ा ही सूक्ष्म संकेत रेणु ने 'मैला आंचल' में बालदास की मनोवेदना द्वारा दे दिया था। देश के स्वाधीनता-संग्राम में काम आनेवाले शिवलोचन शर्मा, मुहम्मद शफी (प्रश्न और मरीचिका) जैसे लोग पीछे छूटते जा रहे थे और उनके स्थान पर विधानाथ, रूपा आण्टी और मुस्तफा कामिल जैसे लोग आगे आ रहे थे क्योंकि राजनीति सिद्धान्तवादियों का क्षेत्र नहीं समझौतावादियों का क्षेत्र बनती जा रही थी। जो रूपा आण्टी पैसों के लिए रामकुमार गबाड़िया नामक एक व्यापारी के साथ होटल में सोती है, वह अन्तत: संसद के चुनाव में जीत जाती है और शिवलोचन शर्मा पराजित होकर पक्षाघात के शिकार हो जाते हैं। सोशलिस्ट पार्टी का कर्मठ सिपाही विधानाथ बिक जाता है।[3] चुनाव के हथकण्डों की ~~चर्च-~~ चर्चा करते हुए वह उदय से कहता है कि यह मतदान करनेवाली जनता बेदिमाग, अपढ़ और भुलावों में भटकनेवाले लोगों का समूह भर है। चुनाव ~~सिद्धान्तों~~ सिद्धान्तों पर न लड़े जाकर ~~रुपया~~ रुपया (चांदी का जूता), शक्ति (असली जूता), शराब, झूठे वादे और झूठे नारों पर लड़े जाते हैं।[4]

उदय द्वारा लोकापवाद की बात कहने पर वह कहता है कि इनका मुकाबला करने की आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि राजनीत में आरोप और अपवाद का उत्तर ~~प्रत्यारोप~~ प्रत्यारोप और प्रत्यापवाद ही है। यहां दूध का धोया कोई नहीं होता। इसमें रहने के लिए मोटी ~~चम्म-~~ चमड़ी की आवश्यकता रहती है, क्योंकि जिस-तिस को सफाई देते घूमने से काम नहीं चलता।[5] यहां चुनाव शुद्ध

---

१. 'प्रश्न और मरीचिका' : पृ० २४६। २. वही : पृ० ३८२। ३. वही : पृ० ५०८। ४. देखिए : वही : पृ० ५१३। ५. देखिए : वही : पृ० ५१३।

लोकतान्त्रिक तरीकों से नहीं लड़े जाते, किन्तु उसमें भी सगावाद, धर्म, सम्प्रदाय, जातिवाद,रुपये-पैसे,गुण्डे आदि सब तत्वों का यथावश्यक उपयोग किया जाता है। पण्डित शिवलोचन शर्मा एक स्थान पर लल्लूसिंहजी के स्थान पर जसराज यादव को टिकट देने का समर्थन करते हैं क्योंकि उस चुनाव-क्षेत्र में अधिकांश वोटर अहीर थे।[1] 'प्रेम अपवित्र नदी' में विष्णुपद को हराने के लिए पंचानन नामक चोर को विश्व-विख्यात मरुतानन्द स्वामी घोषित कर सांप्रदायिक तत्वों को भड़काने की कोशिश की जाती है।[2] वस्तुत: हमारे चुनावों तथा राजनीति पर धन का ही मुख्य प्रभाव है। धन का ही अस्त्र धर्म है और धर्म राजनीति से जुड़ता है तभी मरुतानन्द अस्तित्व में आते हैं। ~~मरुतानन्द~~ मरुतानन्द जिसके लिए पैदा किया जाता है वह यही गन्दी विपन्न बस्तियाँ हैं। धर्म के इस रहस्य को, उसकी शक्ति को, वही पैसेवाले भलीभांति समझते हैं जो यहां की राजनीति को चलाते हैं।

स्वाधीनता-संग्राम में जिन मुस्लिम लीगियों ने अनेक अन्तराय उपस्थित किए थे तथा साम्प्रदायिक भावनाओं को भड़काया था, उन्हीं लीगियों के साथ बाद में कांग्रेसवालों ने अपने संकीर्ण हितों की रक्षा के लिए गठबन्धन किया। कुछ तो लीगी से कांग्रेस भी बन गये। महात्मा गांधी के हृदय-परिवर्तन के सिद्धान्त ने यहां अपना कमाल दिखाया। 'प्रश्न और मरीचिका' में शेख मुस्तफा कामिल लीगी से कांग्रेसी हो जाते हैं तब उन्हें उन मुसलमानों से भी अधिक महत्व दिया जाता है जो पहले से ही कांग्रेस के साथ थे। अतएव इसी उपन्यास में राष्ट्रवादी मुसलमान मुहम्मद शफी लीगियों को जिम्मेदारी के पदों को देने की ~~नीति~~ नीति के विरूद्ध अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए स्वयं को उन लीगियों के मातहत में रखने की बात की कटु भर्त्सना करता है।[3]

स्वाधीनता के उपरान्त मनुष्य नामक संज्ञा ही गायब हो गयी। स्वतन्त्र मनुष्य का तब से जन्म ही रुक गया। अब मनुष्य जो पैदा हुआ उसका नाम है मरुतानन्द, गंजा चौधरी, हरिगोस्वामी (प्रेम अपवित्र नदी) : विद्यानाथ, मुस्तफा कामिल (प्रश्न और मरीचिका) : वैद्यजी (राग दरबारी) :

---

१. द्रष्टव्य : 'प्रश्न और मरीचिका' : पृ० २५५। २. द्रष्टव्य : 'प्रेम अपवित्र नदी' : पृ० २७०-२७१। ३. द्रष्टव्य : 'प्रश्न और मरीचिका' : पृ० ८२-८३।

मोतीलाल, शिवलाल, शामदेव (सूखता हुआ तालाब) : परुसराम (आधा गांव) । उसी में से विकसित हुई हमारी राजनीतिक पार्टियाँ, हमारे नये नेता, पुलिस, व्यापारी, अधिकारी ।

'प्रेम अपवित्र नदी' में लिलियन के यह पूछने पर कि 'आज़ादी की लड़ाई किस तरह के लोगों ने लड़ी ? विष्णुपद बहुत ही मर्मान्तिक शब्दों में इसका उत्तर देता है : 'वे लोग थे -- जमींदारों के लड़के, अंग्रेज़ी व्यवस्था और दुकानदारों के युवक -- जिनके बाप कहीं अंग्रेज़ी शराब के व्यापारी थे, कहीं अंग्रेज़ी वस्त्रों के थोक विक्रेता थे, कहीं वे अंग्रेज़ी चाय-बागान के मैनेजर थे, कहीं वे अंग्रेज़ी दफ्तरों, न्यायालयों के अफसर और वकील थे, कहीं अंग्रेज़ी कालेजों के ~~अध्यापक~~ प्रोफेसर अध्यापक थे । इन्हीं पिताओं, बापों से विद्रोह करके उन युवकों ने आज़ादी की लड़ाई शुरू की । तभी वह दूसरा महायुद्ध आया । उसका काला बाज़ार खुला -- इसी बाज़ार में आज़ादी की लड़त लड़नेवालों के पुत्रों ने धन कमाना शुरू किया । और जैसे ही हमें स्वतन्त्रता मिली -- उन पुरुषों ने जेलों से लौटे हुए अपने पिताओं से कहना शुरू किया -- पिताजी, बाबूजी, एलेक्शन लड़िए .... मन्त्री बनिए -- एलेक्शन लड़ने के लिए धन हमारे पास है ।'[१]

'प्रश्न और मरीचिका' में चीनी आक्रमण की घटना को लिया गया है । बीस अक्टूबर उन्नीस सौ बासठ के दिन चीन ने भारत पर आक्रमण किया । हम सोते हुए पकड़े गये । सबसे बड़ी विडम्बना तो यह थी कि युद्ध आरम्भ हो जाने के बाद युद्ध की तैयारियाँ आरम्भ हो रही थीं । प्रस्तुत उपन्यास में इस युद्ध का ब्यौरेवार वर्णन उपलब्ध होता है । इसी उपन्यास में कामराज योजना तथा तत्कालीन रक्षा-मन्त्री कृष्णमेनन के त्याग-पत्र का संकेत भी दिया ~~गया~~ गया है । जैनेन्द्र का 'मुक्तिबोध' भी इसी विषय-वस्तु को संकेतित करता है ।

इस देश की राजनीति में साम्प्रदायिक ज़हर का सूत्रपात अंग्रेज़ों की कूटनीति से हुआ था । यह ध्यातव्य रहे कि साम्प्रदायिक दंगे अंग्रेज़ी शासन की ही देन है । उनकी कूटनीति के परिणामस्वरूप हमारे देश में अनेक बार साम्प्रदायिक दंगे हुए हैं । भीष्म साहनी कृत 'तमस' उपन्यास में इस साम्प्रदायिक विष के कारणों की बड़ी सूक्ष्म छानबीन की गयी है । 'मौब सायकोलोजी', अफ़वाहों तथा लोगों की कोमल भावनाओं का राजनीतिक उपयोग

---

१. 'प्रेम अपवित्र नदी' : पृ० २७६ ।

कितना भयंकर ~~विल्कुल प्रकार~~ हो सकता है, इसका अनुभव हमें 'तमस' की पांच घोर हत्याकाण्ड पूर्ण दिनों की कथा से होता है। उपन्यास के प्रारम्भ में मुरादअली नत्थू चमार को पांच रुपये देकर एक सुअर मरवाता है। इसके लिए वह डाक्टर सालोतरी का हवाला भी देता है। बाद में इसी सुअर का उपयोग साम्प्रदायिक आग को हवा देने के लिए होता है।

शमशेर सिंह नरूला कृत 'एक पंखड़ी की तेज धार' में उन परिस्थितियों का आकलन हुआ है जिनमें महात्मा गांधी की हत्या हुई थी। अखबारी प्रचार कितना विषाक्त हो सकता है, इसका बड़ा कलात्मक निरूपण इस उपन्यास में हुआ है। शरणार्थी समस्या, अखबारी तन्त्र तथा प्रजातान्त्रिक भारत में चलनेवाले अनेक तिकड़मों के ~~का~~ उल्लेख भी इस उपन्यास में मिलते हैं। रेणु के 'जुलूस' में भी शरणार्थी समस्या के परिवेश को उभारा गया है। 'जुलूस' का 'नोबीननगर' स्थानीय लोगों के शब्दों में 'पाकिस्तानी टोला' अपने परिवेश की यथार्थता के कारण शानी के 'सांप और सीढ़ी' में चित्रित धान-मां के होटलवाले चौराहे की भांति स्मरणीय रहेगा। छात्र-आन्दोलन भी साम्प्रतिक राजनीति का एक हथियार है। काशीनाथसिंह के 'अपना अपना मोर्चा' में इसी छात्र-आन्दोलन के परिवेश को चित्रित किया गया है।

डा० राही मासूम रज़ा के 'आधा गांव' में भारत-पाकिस्तान के विभाजन की बड़ी तीखी आलोचना मिलती है। 'दिल एक सादा कागज़' में भी विभाजन से लेकर बांगला देश के अस्तित्व तक की घटनाओं के संकेत मिलते हैं। मन्मथनाथ गुप्त के 'शहीद और शोहदे' में नेहरू की आई०सी०एस० भक्ति की कटु आलोचना की गयी है। यशपाल के 'मेरी तेरी उसकी बात' में '४२ के आसपास के परिवेश को सशक्त ढंग से उभारा गया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उपर्युक्त उपन्यासों में अधिकांशतः शासकीय मूल्यों की कटु आलोचना एवं भर्त्सना मिलती है। सबमें सरकार की नीतियों के प्रति असहमती का भाव मिलता है, जो कहीं तिक्त आलोचना के साथ तो कहीं व्यंग्य के साथ उभरकर आया है।

(घ) ग्रामीण परिवेश : पूर्ववर्ती विवेचन में स्पष्ट किया जा चुका है कि प्रेमचन्दोत्तर काल में ग्रामवासिनी 'भारतमाता' को उसके बृहत्तर परिवेश में चित्रित करने का कार्य रेणु तथा नागार्जुन ने क्रमश: 'मैला आंचल' तथा ''बलचनमा' के द्वारा किया । इन कृतियों ने ग्रामभौतिक उपन्यासों का दिशा-निर्देश ही नहीं किया, वरन् उन्हें नयी शक्ति एवं बल भी दिया । आलोच्यकाल में ग्रामीण परिवेश को उद्घाटित करनेवाले प्रमुख उपन्यास निम्नलिखित हैं : 'आधा गांव' (गंगौली), 'जल टूटता हुआ' (तिवारीपुर), 'सूखता हुआ तालाब' (शिकारपुर), 'अलग अलग वैतरणी' (करैता), 'राग दरबारी' (शिवपालगंज), 'धरती धन न अपना' (घोड़ेवाहा), 'कभी न छोड़ें खेत, काला जल', 'उग्रतारा', 'जुलूस', 'नदी फिर बह चली' (हराजी, फारुसा, चुरामनपुर), एक टूटा हुआ आदमी', 'सांप और सीढ़ी', पानी के प्राचीर, 'इमरतिया' । 'इमरतिया', एक टूटा हुआ आदमी' तथा 'नदी फिर बह चली' मे जैसे उपन्यासों में ग्रामीण व नगरीय यों दोनों प्रकार का परिवेश उपलब्ध होता है ।

भारतीय इतिहास में उन्नीस सौ सैंतालीस का वर्ष वह बिन्दु है जहां से हमारे राजनीतिक जीवन में दोहराव पाया जाता है । आज़ादी के पूर्व गाँवों के उत्कर्ष के लिए जो कुछ भी सोचा गया था, आज़ादी के बाद घटनाओं का चक्र विपरीत दिशा में घूमा और उस सबको विस्मृत कर दिया गया । परिणामत: ग्राम-जीवन का उत्कर्ष तो दूर रहा, नागरिक जीवन के विषाक्त कीटाणुओं ने उसे अस्वस्थ, विकृत व खोखला कर दिया ।

विकास के सारे नारों के बावजूद श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' अपने 'हरामीपन' में पककर राजनीतिक दलबन्दियों में आकण्ठ डूबा हुआ दृष्टिगत होता है । डा० रामदरश मिश्र के 'पानी के प्राचीर' की सन्ध्या अपने बाल-प्रेमी नीरू से गांव के सम्बन्ध में कहती है : "गांव में क्या रक्खा है नीरू । देखो न सखियों के नाम पर गेंदा, चमेली जैसी आवारा छोकरियां हैं । गांव के लौंडे हैं, जो बिंदिया चमाइन के पीछे पड़े रहते हैं और गांव की लड़कियों पर बुरी निगाह गड़ाये फिरते हैं । गांव के लोग चोरी करते हैं, खेत उखाड़ते हैं, घर फूंकते हैं, चुगली करते हैं -- ऐसे गांव में क्या रक्खा है ? और तो और दिल बहलाने के लिए

कोई तरीका नहीं। किसी से बात करो तो वह दूसरों की शिकायत करता है। औरतें हैं तो उन्हें एक-दूसरे के घर की पोल खोलने में ही मजा आता है।"[१] 'जल टूटता हुआ' का सतीश भी ग्राम्य-जीवन की इस अवदशा से व्यथित एवं चिंतित है : "गांव टूट रहा है, मूल्य टूट रहे हैं, सत्य टूट रहा है, कोई किसी का नहीं, सभी अकेले हैं : एक दूसरे के तमाशाई,.... इस जमाने में दो ही शक्तियां विकासमान हैं पैसा और गुंडई।"[२]

गांव के इस टूटते, भहराते, चरमराते जीवन-मूल्यों से सभी कसमसा रहे हैं। खलिलमियां, विपिन, मास्टर शशिकान्त, (अलग अलग वैतरणी) : सगनी, कामेश्वर (उग्रतारा), परबतिया, मंगलराम, नन्हे (नदी फिर बह चली) तथा काली (धरती धन न अपना) आदि सभी पात्र ग्रामीण-जीवन के इस परिवेश से संघर्ष करते हुए -- जूझते हुए दीख रहे हैं। यहां संक्षेप में हम ग्रामीण-जीवन के विभिन्न आयामों को विश्लेषित करने का प्रयास कर रहे हैं।

(१) ग्रामीण-जीवन पर शहरी जीवन-मूल्यों का दबाव : पूंजीवादी व्यवस्था तथा औद्योगीकरण ने ग्रामीण-जीवन को अनेक स्तरों पर प्रभावित किया है। गांव टूट रहे हैं और गांव के लोग शहर जा रहे हैं। गांव और शहर के जीवन में तत्वत: अन्तर है क्योंकि दोनों की जीवन-प्रणाली भिन्न है। गांव का व्यक्ति जो शहर जाता है, उसमें शहरी मूल्यों के प्रति सम्मोहन का भाव होता है। वह शहर के निवासियों को मुग्ध भाव से देखता है क्योंकि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह स्वयं को उनसे हीन समझता है : ठीक उसी प्रकार जैसे आज के शहर का व्यक्ति योरोप या अमरीका के लोगों की तुलना में स्वयं को छोटा महसूस करते हैं-- करता है। आज भी हिन्दुस्तान के अधिकांश गांवों में शहरी लोगों के प्रति अहोभाव मिलता है। 'राग दरबारी' के रंगनाथ, 'नदी फिर बह चली' के जगलाल, तथा एक टूटा हुआ आदमी के धर्मनाथ के प्रति गांव के सामान्य लोगों का आदर-भाव इसी तथ्य का द्योतक है। कई बार ऐसे लोगों में शहरी जीवन-मूल्यों का आग्रह शहर के मूल निवासियों से भी अधिक मात्रा में पाया जाता है। ठीक उसी प्रकार जैसे मूल अंग्रेजों से भी अधिक अंग्रेजियत मैकोले द्वारा प्रस्थापित शिक्षा से उत्पन्न 'काले अंग्रेजों' में पायी जाती है। तात्पर्य यह कि ऊपर से नीचे तक अन्धानुकरण

---

१. 'पानी के प्राचीर' : पृ० १७२। २. 'जल टूटता हुआ' : पृ० ३८६।

की प्रक्रिया चल रही है। महानगरों के उच्चवर्गीय लोग, पश्चिम से, मध्य-वर्ग उस उच्च-वर्ग से तथा ग्रामीण-जन इस शहरी मध्य-वर्ग से प्रभावित हो रहा है। डा० राही मासूम रज़ा के उपन्यास 'दिल एक सादा कागज़' में नारायणगंज के पास नयी बसी हुई जवाहरनगर की बस्ती में शहरी जीवन-मूल्यों का यह दबाव बखूबी व्यंजित हुआ है। माला का तंग कपड़ों में साइकिल लेकर निकल पड़ना इसी का द्योतक है। साहित्य और कला फैशन की वस्तु बन जाती है। किसी प्रबुद्ध व्यक्ति के मुंह से किसी किताब का नाम निकल जाय तो दूसरे दिन वह किताब अनेक लोगों की लाइब्रेरी में पहुंच जाती है। 'बीफ़' को इसलिए खाया जाता है कि लोग उन्हें दकियानूस न समझें।

शहरी जीवन-प्रणाली मनुष्य को आत्मकेन्द्रित बना देती है। अतः वह स्वार्थी और अनुदार होकर क्रमशः संयुक्त परिवार से विभक्त परिवार की ओर संक्रमित होता जाता है और इस प्रकार अपने परिवार एवं परिवेश से कटता जाता है। 'नदी फिर बह चली' का जगलाल शहर में जाकर 'डलेबर' (ड्राइवर) बन गया है। वह अपनी सारी कमाई शहर में ही उड़ा देता है और पत्नी के समझाने पर कहता है: "घर में आखिर मेरे हिस्से में क्या खर्च आता है, एक तुम हो और कौन ? भइया के तो तीन-तीन बच्चे हैं। जनाना, फिर अपने अलग। कहां वे पांच, कहां तुम अकेली। मेरे खर्च का सवाल ही नहीं उठता।"[1] इसी उपन्यास के बाबू कैलासलाल का परिवार इन नयी परिस्थितियों के कारण ही टूटकर अन्ततः बिखर जाता है। शहर से आया हुआ जगलाल अपनी पत्नी के लिए जो सौन्दर्य-प्रसाधन की चीजें लाता है, उसमें 'क्रीम' और 'पौडर' खास है।[2] पत्नी द्वारा टिकुली की बात करने पर वह उसे देहातिन कहता है। वह उसे बीड़ी पीने का आग्रह भी करता है क्योंकि शहरों में एक विशिष्ट-वर्ग की स्त्रियां 'स्मोकिंग' करती हैं।[3]

जब वह परबतिया को अपने साथ पटना ले जाता है, तब चाहता है कि वह भी शहरी स्त्रियों की तरह रहे। सिनेमा थियेटर में वह परबतिया से इसलिए कुढ़ता है कि वह अपनी छाती पर आंचल को संभाले रहती है, जबकि फर्स्ट

---

१. 'नदी फिर बह चली' : पृ० २३० । २. वही : पृ० २२२ ।
३. देखिए : 'वही : पृ० २१६ ।

क्लास और सैकण्ड क्लास में बैठी शहरी युवतियों की छाती पर आंचल या दुपट्टा नहीं था और वे मर्दों के साथ बिलकुल लापरवाही से बैठी थीं।[1] वह यह भी चाहता है कि परबतिया उसके दोस्तों की गन्दी फुहड़ मजाकों को न केवल सहन करें, बल्कि उसमें सहयोग भी दें क्योंकि उसी में उसे शहरीपन दिखता है। 'अलग अलग वैतरणी' के जगेसर जो पुलिस विभाग में है, उसका व्यवहार भी कुछ-कुछ जगलाल जैसा ही है।

शहरी मूल्यों के दबाव से गांव के मेले-ठेले और तीज-त्योहार भी अब उल्लासहीन होते जा रहे हैं। 'गांव का पढ़ा-लिखा वर्ग इन मेले-तमाशों में एक अजनबी-सा दृष्टिगत होता है।'[2] मेला तो ग्रामीण-जीवन का दर्पण होता है। जैसा जीवन वैसा मेला। यन्त्र ने मनुष्य को भी यन्त्र बना दिया। उत्साह और उमंग की हिलोरें अब समाप्त हो गयीं, तो मेलों का भी रूप बदल गया। मैजापदर के मैदान में तीन महीनों तक लगनेवाला वह बाली का मेला सचमुच में यौवन का, बसंत का ज्वार होता था[4]। पर अब उसकी रौनक फीकी पड़ गयी है। 'सांप और सीढ़ी' मे नगेनबाबू ठीक ही कहते हैं कि असल में वह धुरी ही नहीं रही जिसमें ऐसे मेले-ठेले चलते हैं।[5] मेले अब भी होते हैं, परन्तु अब वहां लुच्चई, नंगई और गुण्डागर्दी खुलेआम होती है, जिसमें रंगनाथ जैसे पढ़े-लिखे युवक केवल द्रष्टा बने अजनबी-से प्रतीत होते हैं तो सनीचर जैसे लोग 'हेरा-फेरी' के चमत्कार में जुट जाते हैं: "उसने (सनीचर ने) सैकड़ों बुड्ढों को दायें-बायें फेंका, कई औरतों के कन्धों पर प्रेम से हाथ रखा, उनकी छातियों के आकार

---

१. देखिए: 'नदी फिर बह चली': पृ० २६३। २. 'हिन्दी उपन्यासों में ग्राम-चेतना': डा० ज्ञानचन्द्र गुप्त: पृ० २९८। ३. द्रष्टव्य: 'मेला भी एक ऐसा ही है पण्डित। करैता का मेला पूरी नरवण का मेला है।': 'अलग अलग वैतरणी': पृ० १३। ४. द्रष्टव्य: "दूकानें-- कतार-दर-कतार दूकानें। शहर की भी, गांवों की भी। चूड़ी-फुंदने से लेकर चने-मुर्रे तक। मुर्गी से लेकर मोहनपुर की भैंस तक। फुलोरौता के मटकों से लेकर फुलबाहरी तक। चौरपाई के बानों से लेकर भगतू चमार तक। कहीं गैस बत्तियां जली हैं। कहीं नौटंकियां चली हैं। कहीं चक्करदार झूले अड़े हैं। कहीं तम्बू पड़े हैं। लड़कियां, लड़कियां, असख्य लड़कियां। युवक और अनगिन युवक। जोड़े और जोड़े ही जोड़े। गीत और एक नहीं, लैंजा, रमरी रोसोनी, रावनी बेलो, चईतपरब और बांसियों गीत। लाल और असख्य साड़ियों में मचलता हुआ यौवन, पटा हुआ जवान मैदान और सैकड़ों देव-धामियों की रंग-बिरंगी फुंण्डियों से ढका हुआ आकाश....": 'सांप और सीढ़ी': पृ० १६०।

५. वही: पृ० १५८।

-प्रकार का हाल-चाल लिया और यह सब ऐसी निस्संगता से किया जैसे भीड़ से निकलने के लिए ऐसा करना धर्म में लिखा हो ।"[1] 'नदी फिर बह चली' में भी इस प्रकार की हाथ-सफाई का उल्लेख मिलता है : "औरतें अगल-बगल बचाकर चलने की कोशिश करतीं, मगर किसी न किसी का हाथ इधर-उधर पड़ ही जाता था । पहचानना मुश्किल था कि वह हाथ की सफाई किसने दिखलायी और औरतें मन ही मन गाली बकती हुई आगे बढ़ती जातीं ।"[2] 'अलग अलग वैतरणी' के करैता के मेले में करैता की किसी शोख लड़की से छेड़खानी के कारण मारपीट और खून-खराबा आम बात थी ।[3]

'नदी फिर बह चली' में हिमांशु श्रीवास्तव ने विस्तृत काल-फलक को लिया है, अतः गांवों में आये नये परिवर्तनों को उसमें स्पष्टतः लक्षित किया गया है । सोहर, झूमर, गाली, भौंडी, डोमकछ, आल्हा-ऊदल, ननदी-भउजइया, लोरिक-संवरू, मेला घुमनी प्रभृति पुराने लोकगीतों का स्थान अब फिल्मी गीतों ने ले लिया है । जब कई वर्षों बाद परबतिया पुनः गांव आती है तब देखती है कि एक चौदह-पन्द्रह साल का लड़का खेतों के किनारे-किनारे फिल्मी गीत गाते हुए बगीचों की ओर जा रहा है :

"आग लगी तन मन में, दिल को पड़ा थामना,
राम जाने कब होगा सइयांजी का सामना ।"[4]

सुनकर परबतिया सोचती है कि अब देहातों में भी सिनेमा के गीतों का प्रचार हो गया है । कबीर, जोगीड़ा, रामायण, तथा कबीर, मीरा, दादू, कमाल, पलटू आदि सन्तों के भजनों के स्थान पर[5] अब गांव के भजनों में फिल्मी धुनें चलने लगी हैं । कहीं कहीं तो एकाध शब्द के हेर-फेर से भजन बना दिया जाता है, यथा --

"लेके पहला-पहला प्यार तजके ग्वालों का संसार
मधुरा नगरी में आया है कोई बंसीधर ।"[6]

'सूखता हुआ तालाब' में हरिवंश पुराण की कथा के बाद ऐसी फिल्मी भजनों की धूम मच जमती है, यथा --

"कि मेरा मन डोले हो तन डोले हो मेरे मन का गया करार हो

---

१. 'राग दरबारी' : पृ० १५५ । २. 'नदी फिर बह चली' : पृ० १९८ ।
३. द्रष्टव्य : 'अलग अलग वैतरणी' : पृ० ४ । ४. 'नदी फिर बह चली' : पृ० ३४४ । ५. द्रष्टव्य : 'रंगभूमि' : पृ० २७ । ६. 'राग दरबारी' : पृ० २६६ ।

कौन बजावे बांसुरिया कि आ रे किसुना कौन बजावे बांसुरिया ।"[1]

तथा -- "मोहे पनघट पे नन्दलाल छेड़ि गयो रे, आरे मोरी नाजुक कलइया मरोरि गयो रे ।"[2]

(२) नवीन परिवर्तन : नवीन शिक्षा, शहरीकरण, औद्योगीकरण तथा यंत्रीकरण के कारण गांवों में भी कुछ नवीन परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं। अब गांवों में भी स्कूल, हाईस्कूल तथा इण्टरमीडिएट (कहीं कहीं डिग्री कालेज तक) कालेज खुलने लगे हैं। 'जल टूटता हुआ' में हाईस्कूल के खुलने का उल्लेख मिलता है तो 'राग दरबारी' का छंगामल इण्टरमीडिएट कालेज तो स्मृति-पट पर सदैव छाया रहेगा। फलतः अब गांवों में भी मैट्रिक्युलेट ही नहीं बल्कि बी०ए०, एम०ए० तथा एम०बी०बी०एस० लड़के भी मिलने लगे हैं। 'अलग अलग वैतरणी' के विपिन तथा देवेन्द्रनाथ क्रमशः एम०ए० और एम०बी०बी०एस० हैं। 'जल टूटता हुआ' का चन्द्रकान्त आई०ए०एस० में चुन लिया जाता है। उसी उपन्यास का रामकुमार तथा 'नदी फिर बह चली' का नन्हे एम०ए० हैं। अब कुछ कुछ लड़कियां भी 'स्त्री-सुबोधिनी' से आगे बढ़कर हाईस्कूल और कालेज तक की शिक्षा लेने लगी हैं। 'पानी के प्राचीर' की सन्ध्या उच्च शिक्षा के लिए शहर जाती है। 'आधा गांव' की सईदा भी अलीगढ़ में रहकर पढ़ती है। शुरू में अब्बू मियां को सईदा का पढ़ना अखरता था, पर जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के पश्चात् सईदा का पढ़कर नौकरी करना उन्हें भीतर से सुखकर ही लगता है।

कहीं कहीं बड़े जमींदार अब कृषि में ट्रैक्टर का प्रयोग भी करने लगे हैं। गांव में स्थान-स्थान पर अब आटा-चक्कियां खुल रही हैं। कहीं कहीं नल और बिजली भी आ गये हैं। छोटे-छोटे गांवों में भी अब बस-यात्रा शुरू हो गई है। 'नदी फिर बह चली' की परबतिया जब कुछ वर्षों बाद पटना से अपने मैके हराजी जाती है, तब उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि अब गांवों में भी बस यात्रा शुरू हो गई है।

(३) टूटते हुए गाँव : आजादी के बाद सरकारी नीतियों का जो उल्टा चक्र चला, उसके परिणामस्वरूप गांवों का नव-निर्माण होना तो दूर रहा, प्रत्युत गांव के लोग शहरों

---

१. 'सूखता हुआ तालाब' : पृ० ३० । २. वही : पृ० ३६ ।

की ओर भागने लगे । `सूखता हुआ तालाब` के देवप्रकाश, `अलग अलग वैतरणी` के विपिन तथा डा० देवेन्द्रनाथ, `जल टूटता हुआ` का चन्द्रकान्त, `एक टूटा हुआ आदमी` का घर्मनाथ, `दिल एक सादा कागज़` का रफ़्फ़न जैदी आदि इसके उदाहरण हैं ।

जिस प्रकार हमारे देश की मेधा-सरस्वती (Cream of nation) ~~विदेशमनमिजन~~ विदेशगामिनी हो रही है : (डा० चन्द्रशेखर, डा० खुराना, डा० नार्लिकर, रविशंकर, रूसी सूरती तथा फारुक एन्जीनियर) उसी प्रकार गांव की प्रतिभा शहरों की ओर आकृष्ट हो रही है । `अलग अलग वैतरणी` के जग्गन मिसिर की मनोव्यथा में इस एकतरफ़ा निर्यात को रेखांकित किया गया है । अच्छा अनाज, दूध, घी, ~~सब्जि~~ सब्जी, अच्छे मोटे ताजे जानवर, हट्ठे-कट्ठे मनुष्य, प्रतिभाएं -- सभी तो शहर जा रहा है । जाते तो लोग पहले भी थे, पर अक्सर वे जिनको गांवों में काम नहीं मिलता था या जमींदारी के जोर-जुल्म से घबड़ाकर भाग जाते थे । पर अब तो एक नये तरह का `अनत गौन` चल रहा है । यहां रहते वे हैं जो यहां रहना नहीं चाहते, पर कहीं जा नहीं पाते । यहां से जाते अब वे हैं, जो यहां रहना चाहते हैं पर रह नहीं पाते ।[1]

(४) सामन्तवादी मूल्यों के बदलते चेहरे : जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के साथ ही सामन्तवादी मूल्य भहरा गये यह स्वीकार करना कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण है । कुछ लोगों की जमीनें गयीं (उदा० `आधा गांव` के सैयदजादों की जमीनें जो गाजीपुर रहकर गंगौली की ज़मीनों पर अधिकार रखते थे ।) परन्तु जिनकी जड़ें गांव में ही थीं ऐसे अधिकांश लोगों ने किसी न किसी प्रकार से अपनी जमीनों को बचा लिया । आज भी हिन्दुस्तान के गांवों में जमींदार हैं जो दीन-हीन, गरीब, निम्न-जाति के लोगों पर वैसे ही अत्याचार कर रहे हैं । `जल टूटता हुआ` के दीनदयाल, `नदी फिर बह चली` के जनार्दनराय, `सूखता हुआ तालाब` के शिवलाल तथा शामदेव, जैसे लोग आज भी निम्न-जाति के लोगों का आर्थिक व नैतिक ~~शोषण शोषण~~ शोषण कर रहे हैं ।

कहीं कहीं उन पुराने सामन्तवादी मूल्यों ने ही लोकतान्त्रिक मूल्यों का मुखौटा ओढ़ लिया है । `अलग अलग वैतरणी` के जैपालसिंह, `जल टूटता हुआ` के महीपसिंह तथा `राग दरबारी` के वैद्यजी जैसे लोग फिर कहीं

---

१. `अलग अलग वैतरणी` : पृ० ६८५-६८६ ।

-न-कहीं स्थापित हो रहे हैं, जो लोकतन्त्र का आधार लेकर लेकतान्त्रिक मूल्यों का गला घोंट रहे हैं। वैद्यजी छंगामल कालेज ~~कक~~ के मैनेजर के पद का चुनाव तमंचे के बल पर लोकतान्त्रिक तरीकों से (?) जीत जाते हैं। इसका बड़ा ही व्यंग्यात्मक चित्र लेखक ने खींचा है। रात के समय प्रजातन्त्र वैद्यजी के स्वप्न में आता है : " मैं आप के कालेज का प्रजातन्त्र हूं।... मैनेजर का चुनाव कालिज खुलने के दिन से आज तक नहीं हुआ है। इन दिनों कालिज में हर चीज़ फल-फूल रही है, पर मैं हीएक कोने में पड़ा हुआ हूं। एक बार कायदे से आप चुनाव करा दें। उससे मेरे जिस्म पर एक नया कपड़ा आ जायगा। मेरी शर्म ढंक जायेगी।... जागते ही उन्होंने... एकदम तय किया कि देखने में चाहे ~~बिलकुल~~ कितना बांगडू लगे, पर प्रजातन्त्र भला आदमी है, ~~और उसकी मदद करनी चाहिए~~ और अपना आदमी है, और उसकी मदद करनी चाहिए। उसे कम-से-कम एक नया कपड़ा दे दिया जाय ताकि पांच भले आदमियों में वह बैठने लायक हो जाय।"[१]

जिस प्रकार ~~किसने~~ प्रतिवर्ष किसी देव को नया कपड़ा चढ़ाया जाता है उसी प्रकार इन आधुनिक 'देवों' को भी आयेदिन चुनावरूपी नये कपड़े दिये जाते हैं, ताकि उनकी बेशर्मी ढंकी रहे।

आज़ादी के बाद गांवों में एक नया वर्ग भी उभरा है -- नव धनिक वर्ग। ज्यों ज्यों यह वर्ग समृद्ध होता जा रहा है, त्यों त्यों उसके अत्याचार भी बढ़ रहे हैं। 'अलग अलग वैतरणी' के जग्गन मिसिर का यह कथन कितना उपयुक्त है : " पहले गांव में जुलुम जमींदार के लोग करते थे। कारिन्दा, सीरवाह,पटवारी, अमीन, कानूनगो सबकी मिली भगत थी।... (पर अब) अचंभा ई देखकर होता है सुखदेवरामजी ~~क~~ कि जिन पर उस वक्त जुल्म होता था वे ही आज जालिम बन गए हैं। कुभइये लोग दो पैसे के आदमी हो गए, तो आंख उलट गयी। आज जुल्म कौन करता है गांवों में ? वही कुटभइये जो पहले जमींदारी के बूटों से रौंदे जा रहे थे। अब कुटभइये गोल बनाकर अपने से कमजोरों, गरीबों को सताते हैं।"[२] 'जल टूटता हुआ' के दीनदयाल, 'अलग अलग वैतरणी' के देवी चौधरी और सुरजूसिंह, 'जुलूस' के तालेवर गोढ़ी तथा 'आधा गांव' के परुसराम ऐसे ही नव-धनिक लोगों में से हैं।

---

१. 'राग दरबारी' : पृ० १७६।

२. 'अलग अलग वैतरणी' : पृ० ६३२।

(५) पुलिस का रवैया : गांववालों के प्रति पुलिस का रवैया आज भी बहुत कुछ वही है। रंगभूमि का बजरंगी पहलवान होते हुए भी पुलिस के डर से भिगी बिल्ली बन जाता है। आज भी गांवों में बहुत से लोग पुलिस के नामसे कांपते हैं। गांव का सत्ता-संपन्न वर्ग पुलिस अधिकारियों की दावत करता है और पुलिस की रिश्वत के नये तौर-तरीके तथा तिकड़मों को भिड़ाता रहता है क्योंकि पुलिस के साथ उसका भी स्वार्थ जुड़ा हुआ है। 'सूखता हुआ तालाब' का दयाल तो पुलिस का एजन्ट ही माना जाता है। इसी शक्ति के बल पर वह गांव के अन्य लोगों को दबाता भी है। 'जल टूटता हुआ', 'अलग अलग वैतरणी', 'राग दरबारी', 'नदी फिर बह चली' प्रभृति उपन्यासों में हम पुलिस के इस व्यवहार को स्पष्टतया देख सकते हैं।

गांव के कुछ लोग तो इतने शक्ति-संपन्न हो जाते हैं कि कई बार पुलिस उनके हाथ का खिलौना-मात्र बन जाती है। 'राग दरबारी' के वैद्यजी की बात को जब एक अनाड़ी (?) पुलिस अधिकारी नहीं मानता तब झूठे गवाहों को इजलास में खड़ा करके वे ऐसी-~~दुलत्ती~~- दुलत्ती लगाते हैं कि बेचारे को मुंह की खानी पड़ती है। कई बार राजनीतिक गुटबन्दियों में भी पुलिस का प्रयोग किया जाता है। 'आधा गांव' के परसराम की 'पोलिटिकल केरियर' को खत्म करने के लिए एक औरत पर 'ज़िना' करने का झूठा मुकदमा गढ़ा जाता है।[१] गांवों में आयेदिन चलती रहनेवाली फौजदारियों के मूल में भी पुलिस का सहयोग ही है, जिसका बड़ा ही व्यंग्यात्मक चित्रण रज़ा के 'आधा गांव' उपन्यास में मिलता है। कई बार पुलिस को दोनों ओर से रिश्वत मिलती है।

सरकार की कागजी नीति तो आंतरज्ञातीय विवाह, विधवा-विवाह आदि को प्रोत्साहन देने की है, किन्तु सामन्तवादी खूंटों से बंधी हुई पुलिस कई बार उसमें बाधक होती है। नागार्जुन के 'उग्रतारा' उपन्यास में कामेश्वर उगनी के साथ पुनर्विवाह करना चाहता है, परन्तु गांव के पुरातन-पंथियों के प्रभाव में पड़कर पुलिस बीच में ही कामेश्वर को दूसरे केस में फंसाकर उगनी का विवाह जबरदस्ती भभिखनसिंह नामक एक प्रौढ़ पुलिस मैन से करवा दिया जाता है।

---

१. द्रष्टव्य : 'आधा गांव' : पृ० ३५७-३५८।

'जल टूटता हुआ' में पुलिस का दारोगा दीनदयाल जैसे धनिक लोगों से मिल जाता है। कुंजू को बदमी के पास यह कहकर भेजा जाता है कि उसे सांप ने काट खाया है और बाद में पुलिस के दारोगा की सहायता से उस पर बदफैली का आरोप लगाया जाता है।

'कभी न छोड़ें खेत' में लेखक ने पुलिस व्यवस्था पर तीक्ष्ण प्रहार किए हैं। उपन्यास का हवालदार अपने भ्रष्टाचार को न्यायिक सिद्ध करते हुए कहता है : "और तो सब ठीक है, लेकिन मेरे लिए दो सौ रूपये कम हैं। दो सौ रूपये तो होलदारी के हो गये। दो सौ रूपया कलम-घिसाई का भी होना चाहिए। सारी रिपोर्ट तो मैं ही लिखूंगा। थानेदार तो सिर्फ़ उस पर दस्तखत करेगा।"[1]

रिश्वत लेकर झूठे रिपोर्ट तैयार करना यह तो पुलिस के लिए बाएं हाथ का खेल है। नागार्जुन के 'इमरतिया' उपन्यास में जमनिया मठ के 'बालमेध' अनुष्ठान की बात फैल जाती है। भरतपुर का थानेदार जमनिया पहुंचने वाला था लेकिन अन्त में हुआ यह कि भगौतीप्रसाद स्वयं मठ की एक ~~खूबसूरत~~-खूबसूरत सधुआइन गौरी को लेकर उनकी सेवा में पहुंच गये। दोनों चार दिन भरतपुर में रहे और पांचवे दिन खुशी-खुशी लौट आये। भरतपुरा की पुलिस की के रेकोर्ड में दर्ज हुआ : "पूजा की आठवीं रात में न जाने किधर से एक पगली आयी। उसकी गोद में छ: महीने का बच्चा था। पुजारी की नज़र बचाकर उसने बच्चे को हवन-कुण्ड में डाल दिया। कोशिशें तो काफ़ी की गयीं लेकिन बच्चे को बचाया नहीं जा सका। बाबा की बड़ी ख्वाहिश थी कि पगली को थाने तक ~~पहुंच~~ पहुंचा दिया जाए, लेकिन अगले दिन ही वह गायब हो गयी। अब कुछ गुण्डों ने उल्टी बातें फैला दी हैं। सरकार बहादुर से अर्ज़ है कि वह जमनिया मठ के सन्त-शिरोमणि बाबाजी महाराज की प्रतिष्ठा और इज़्ज़त को ध्यान में रखे।"[2] यह भी रिश्वत का एक प्रकार है।

'नदी फिर बह चली' के जमींदार बाबू दुर्गालाल की फुलवारी में ब्राह्मण का एक छोटा-सा लड़का नगीना चोरी-चोरी जामुन के पेड़ पर चढ़ जाता है। रखवाले और बच्चे में कुछ कहा-सुनी होने पर दुर्गालाल के कहने से रखवाला उसके पेट में भाला घुसेड़ देता है। बच्चे के प्राण-~~पखेरू~~ उड़ जाते हैं, परन्तु बाबू दुर्गालाल के खिलाफ़ बोलने की हिम्मत कोई नहीं करता। चौकीदार ने खबर दी तो दारोगा आये और उन्होंने अपनी कापी पर लिखा कि "लड़का हसुआ लेकर

1. 'कभी न छोड़ें खेत' : पृ. ४६, 2. 'इमरतिया' : पृ. २८-२९।

पेड़ पर चढ़ा था । एकाएक डाल छूट गयी और वह हंसुए के साथ नीचे गिरा । धोखे से हंसुआ सीधे उसके पेट में जा धंसा ।"[१] तात्पर्य यह कि गांव के सर्वहारा वर्ग के शोषण में प्राय: स्थापित हितों के साथ पुलिस की साझेदारी चलती रहती है।

(६) न्यायतन्त्र और रिश्वतखोरी : न्यायतन्त्र के छोटे अधिकारियों एवं कर्मचारियों में रिश्वतखोरी ब्रिटिश शासन से ही विद्यमान रही है और स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् प्राय: समूचे न्याय-तन्त्र में इसमें सुधार होने के स्थान पर विकृति ही बढ़ती जा रही है। न्यायमन्दिरों में कदम-कदम पर और शब्द शब्द पर रूपये देने पड़ते हैं। 'राग ~~दरबार~~-दरबारी' का लंगड़ नक़ल के लिए महीनों कचहरी के धक्के खाता है पर उसे नक़ल नहीं मिलती क्योंकि नकलनवीस पांच रूपया मांगता था जब कि बकौल लंगड़ के 'रेट' दो रूपये का है। इसी पर बहस हो गयी। लंगड़ ने कसम खायी कि "मैं रिश्वत न दूंगा और कायदे से ही नक़ल लूंगा, इधर नक़ल बाबू ने कसम खायी कि मैं रिश्वत न लूंगा और कायदे से ही नक़ल दूंगा ।"[१] और 'कायदे' से नक़ल उसे कभी नहीं मिलती ।

रिश्वत का यह विष समाज में इतना फैल गया है कि लोगों को उसमें कोई बदी ही नहीं दिखती, बल्कि कई बार उसे वे न्यायोचित ठहराने की कोशिश भी करते हैं। राग दरबारी' का रूप्पन इस पर व्यंग्य करते हुए कहता है कि रिश्वत लेना भी पारिवारिक आवश्यकता का एक बहाना हो गया है, "एक रिश्वत लेता है तो दूसरा कहता है कि क्या करे बेचारा। बड़ा खानदान है, लड़कियां ब्याहनी हैं। इस प्रकार सारी बदमाशियों का तोड़ लड़कियों के ब्याह पर होता है।"[२]

'कभी न छोड़ें खेत' में इस रिश्वतखोरी का एक नया कोण मिलता है। "डाक्टर को झूठी रिपोर्ट लिखने के लिए तथा झूठी रिपोर्ट न लिखने,~~के लिए~~ दोनों के लिए रिश्वत दी जाती है। बड़े-बड़े वकीलों की फीस पांच-पांच हज़ार रूपये होती है। जज रिश्वत लेकर फैसला रिश्वत देनेवाले के पक्ष में करते हैं। इस मुल्क में सबकुछ हो सकता है, बस कीमत देनी पड़ती है।"[३]

---

१. राग दरबारी' : पृ० ४७। २. वही : पृ० ४८। ३. 'हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना' : डा० कुंअरपालसिंह : पृ० ९८-९९।

गाँवों में कुछ लोगों का तो गुजर ही मुकदमेबाजियों पर चलता है। वादी तथा प्रतिवादी से पैसे लेकर झूठी गवाही देना उनका व्यवसाय हो गया है। `धरती धन न अपना` के नत्था सिंह उर्फ धड़म चौधरी झूठी-सच्ची गवाहियाँ देकर ही अपनी गुजर-बसर करते हैं। काम हो या न हो हर दूसरे-तीसरे दिन कचहरी जाना उनके लिए आवश्यक है।[1] रेणु के `जुलूस` में भी इसका संकेत मिलता है।[2] `राग दरबारी` के पण्डित राधेलाल `काना` तथा उनके शिष्य बैजनाथ तो मानो गवाही देने की `प्रैक्टिस` ही करते हैं। पण्डित राधेलाल को झूठी गवाही देने में उच्च कोटि की दक्षता प्राप्त थी। उन्हें आज तक बड़े-से-बड़ा वकील भी जिरह में नहीं उखाड़ सका था और पकड़ में न आनेवाली झूठ बोल सकने के कारण वे पूरे जिले के मुकदमेबाजों और गवाहों में `कभी न उखड़ने वाले गवाह` के रूप में अभूतपूर्व प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे।[3]

यहाँ युगीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि उत्तर प्रदेश जैसे क्षेत्रों से जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् जमीन-जायदाद की मुकदमेबाजी कम हुई किन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् उनका बाह्य रूप ही बदला है। अब पार्टीबाजी और राजनीतिक कारणों से इसका परिमाण लगभग वैसा ही है। उल्टे देखा जाय तो राजनीतिक दाँवबाजी ही इस न्यायिक अभियान पर हावी है।

(७) __छोटी जातियों के साथ होनेवाले अत्याचार और उभरते नये स्वर__ : `जल टूटता हुआ`, `सूखता हुआ तालाब`, `अलग अलग वैतरणी`, `नदी फिर बह चली`, `धरती धन न अपना` प्रभृति उपन्यासों में छोटी जाति के लोगों पर होनेवाले अत्याचारों और अपमानों का बड़ा ही हृदयद्रावक चित्रण मिलता है। `अलग अलग वैतरणी` का जमींदार बुझारथसिंह अपने नौकर दुखन चाचा (चमार) को प्रायः मारता-पिटता रहता है। इसी उपन्यास का वंशीसिंह भी अपने नौकर भिनकू चमार तथा उसके बेटे घुरबिन को जब-तब पिटता

---

१. धरती धन न अपना` : पृ० ९९-१०० ।

२. द्रष्टव्य : `दो घर राजपूत, सौतेले भाई हैं -- दोनों खेती करने के अलावा झूठी गवाही देते हैं और लठैत का काम करते हैं।` : `जुलूस` : पृ० १३ ।

३. देखिए : `राग दरबारी` : पृ० ६२ और २७८ ।

रहता है। इसी उपन्यास के सरूप भगत की बेटी की मौत शंकास्पद स्थितियों में होती है क्योंकि उसका प्रेम गांव के एक सम्मानित व्यक्ति के 'शाहजादे' से हो गया था और वे दोनों भाग जाना चाहते थे। इसी उपन्यास में चमार जाति के अगुओं की दो-दो बेटों का वर्णन मिलता है, जिसके मूल में भी गांव के जमींदारों का अत्याचार ही था।

जगदीशचन्द्र कृत 'धरती धन न अपना' तो छोटी जातियों पर होनेवाले अत्याचारों के वर्णन से अटा-पड़ा है। बाढ़ के दिनों में जब चमार बेगार से मना कर देते हैं तब उनका तथा उनकी औरतों का दिशा-मैदान जाना भी मुश्किल हो जाता है क्योंकि सारे खेत तो जमींदारों के पास हैं। इसी उपन्यास के चौधरी हरनामसिंह की मकाई के खेत में कोई जानवर छोड़ देता है, तब वह चमादड़ी में जाकर सभी चमारों को डांटता-फटकारता और गालियां देता है। जीतू को तो जूते से मार-मार कर लहूलुहान कर देता है क्योंकि उन दिनों वह पहलवानी सीख रहा था।[1] इसी उपन्यास में काली की चाची काली के पक्के मकान बनाने के विचार से प्रसन्न होने के स्थान पर चिन्तित होती है क्योंकि उससे चौधरियों की निगाह पर चढ़ जाने का डर उसके दिल में समाया हुआ है।[2] गांव में कोई छोटी जाति का व्यक्ति पक्का पाखाना तो बना ही नहीं सकता और यदि कोई साहस करे तो खलबली मच जाती है।[3] 'दिल एक सादा कागज़' में तो पाखाने के लिए 'स्टे आर्डर' तक मंगवाया जाता है।

गांव में उच्च जाति के लोग निम्न जाति की बहू-बेटियों पर अपना स्वाभाविक अधिकार समझते हैं। 'अलग अलग वैतरणी' के सुरजूसिंह तथा बुझारथसिंह सुगनी चमारिन से फंसे हुए हैं। 'सूखता हुआ तालाब' की चेनइया का शारीरिक सम्बन्ध गांव की चण्डाल-चौकड़ी के प्रायः सभी सदस्यों (शिवलाल, धर्मेन्द्र, दयाल आदि) से हैं। 'जल टूटता हुआ' की बदमी भी अनेकों की वासना का शिकार हो चुकी थी। इन छोटी जातियों का यह नैतिक शोषण इतना आम हो गया है कि 'धरती धन न अपना' का मंगू अपनी ही बहन ज्ञानो के सम्बन्ध में होनेवाली गन्दी बातों को सुनता रहता है। उसकी आंखों का पानी कितना उतर गया है, इसका एक बढ़िया उदाहरण इसी उपन्यास में मिलता है। मंगू

---

१. देखिए : 'धरती धन न अपना' : पृ० २०-२६। २. वही : पृ० ३६।
३. द्रष्टव्य : 'आधा गांव' : पृ० ३२६।

हरदेव चौधरी के कसरती शरीर की जब प्रशंसा करता है तब वह अपनी दोनों बाजुओं को अकड़ाता हुआ कहता है : " चमारा कसरत की है, घी खाया है, दूध पिया है, तेरी तरह बाजरे की सूखी रोटियां नहीं खायी है । "[1] इस पर मंगू खिलखिलाकर हंसते हुए कहता है : " तो क्या हुआ । इसका फायदा तो किसी चमारन को ही होगा । "[2] यही मंगू आगे चलकर अपनी ही जाति और महोल्ले की लड़की लच्छो को हरदेव चौधरी के साथ फंसाने की चेष्टा करता है ।

यद्यपि आज भी हिन्दुस्तान के गांवों में इन निम्न जाति के अपढ़ निरीह लोगों के साथ पशुवत व्यवहार हो रहा है, तथापि कभी कभी कहीं से कुछ विद्रोही स्वर भी उभर जाता है जिसका यत्किंचित उल्लेख 'जल टूटता हुआ' तथा 'नदी फिर बह चली' जैसे उपन्यासों में उपलब्ध होता है । 'जल टूटता हुआ' के कुंजू द्वारा भरी सभा में बदमी को स्वीकारना इसी तथ्य को द्योतित करता है । इसी उपन्यास की हरिजन कन्या लवंगी का पुण्यप्रकोप भी इस नये स्वर का संकेत दे रहा है । उसका भाई हंसिया एक उच्च जाति की लड़की पार्वती से आशनाई में पकड़ा जाता है । वस्तुत: पार्वती ने ही उसे बुलाया था, परन्तु लोगों द्वारा पकड़े जाने पर वह हंसिया पर बलात्कार का आरोप लगाती है । लोग हंसिया पर टूट पड़ते है और मार-मार कर उसे मृत:प्राय-सा बना देते हैं । तब वह दहाड़ती हुई कहती है : " क्या हुआ अगर मेरे भाई ने एक बाभन की लड़की से भला-बुरा किया ? चमार का खून खून नहीं है । बाभन का खून ही खून है । हमारी कोई इज्जत नहीं होती, क्या बाभनों की ही इज्जत होती है ?... जब चमरौटी की तमाम लड़कियों पर ये बाबा लोग हाथ साफ करते हैं तो कोई परलय नहीं आती और कोई चमार बाभन की लड़की को छू दे तो परलय आ जाती है । "[3]

'नदी फिर बह चली' में यह विद्रोह कुछ संगठित स्वरूप में आता है । नन्हे जो एम० ए० में फर्स्ट आया है[4], उच्च-वर्ग से सम्बन्धित होने के बावजूद सर्वहारा वर्ग का पक्ष लेता है । परबतिया गांव के स्कूल के लिए अपनी थोड़ी-सी जमीन भी इसलिए दे देती है कि स्कूल का नाम उसके पति के नाम से रखा जाएगा । ~~परन्तु उद्घाटन के दिन वह देखती है, उस पर लिखा था --~~ परन्तु उद्घाटन के दिन वह जो साइनबार्ड देखती है, उस पर लिखा था --' जनार्दन प्राथमिक विद्यालय' । ~~तात्पर्य यह कि गांव का शक्ति-संपन्न जमींदार जनार्दनराय स्कूल का नाम अपने नाम से करवा लेता है । इस पर नन्हे तथा युवक नेता मगललाल~~

१-२ : 'धरती धन न अपना' : पृ. १११ ।

३. 'जल टूटता हुआ' : पृ. ~~३२~~ ३५३-३५४ । ४. 'नदी फिर बह चली' : पृ. ३६३ ।

प्राथमिक विद्यालय'। तात्पर्य यह कि गांव का शक्ति-संपन्न जमींदार जनार्दनराय स्कूल का नाम अपने नाम से करवा लेता है। इस नन्हे तथा युवक-नेता मंगललाल नीचे तबके के लोगों को संगठित करते हैं। एक स्थान पर नन्हे परबतिया से कहता है --' तुम्हारे साथ अत्याचार किया गया है। हम लोग अत्याचार के खिलाफ लड़ेंगे। अब बुढ़ऊ नेताओं का मठ ढहेगा। नौजवान उन्हें पछाड़ेंगे। हम लोगों में जात-पांत का भेद नहीं रहेगा।'[1]

जब इस नवयुवक दल को कुछ रूपयों की आवश्यकता पड़ती है तब परबतिया उसे अपना एक मात्र गहना देते हुए कहती है :' मंगटीका से सोहाग का कुछ नहीं बनता-बिगड़ता। औरतें मंगटीका पहनती हैं, मगर मरद की इज्जत करना नहीं जानतीं। कलुआ के बाप के नाम पर मैं मन में सेनुर पहनती हूं, जेवर और मांग में नहीं।'[2] इस नवयुवक दल के हाथों जनार्दनराय पराजित होते हैं। स्कूल का साइनबोर्ड उतारकर जगलाल के नामका साइनबोर्ड लगा दिया जाता है। इस पर बिगड़ते हुए जनार्दनराय जब मंगललाल से कहता है कि अब ' एक भी भूमिहार का लड़का इस स्कूल में नहीं आवेगा।'[3] तब उसके जवाब में मंगललाल कहता है :' अब न तो आप भूमिहार स्कूल कायम कर सकते हैं और न भूमिहार राज्य : क्योंकि अब जनता आपका साथ न देगी। अगर आप अब भूमिहारी की बातें करेंगे, तो धोबी न आपके कपड़े धोयेगा, न हजाम बाल बनायेगा। सारी जाति के लोग हमारे साथ हैं। अगर आपने जात-पांत के नाम पर सर उठाने की कोशिश की तो यह होकर रहेगा।'[4] इस पर जनार्दनराय सरकारी हाकिमों से मिलकर सरकारी तगावी की वसूली के लिए कुर्की-जब्ती करवाते हैं। पुलिसवाले किसानों के गाय-बैल खोलने लगते हैं। इस पर संघर्ष होता है। मंगललाल के सिर को चोट पहुंचती है। तब पूरा चुरामनपुर संगठित होकर पटना विधान सभा के सामने ' किसान-मजदूर एक हो' का नारा लगाते हुए धरना के पहुंच जाता है। लाठियां चलती हैं। अश्रुगैस छोड़ी जाती है। परबतिया का मस्तिष्क फट जाता है, पर लोगों की जीत होती है, सरकार को झुकना पड़ता है। अस्पताल में जगलाल की ओर संकेत करते हुए परबतिया नन्हे से कहती है :' नन्हेलाल देखो, यह है मेरा असली

---

१. ' नदी फिर बह चली ' ? पृ० ३६४। २. वही : पृ० ३६६। ३. वही : पृ० ४०१। ४. वही : पृ० ४०१।

मंगटीका ।... और, परबतिया का सिर दूसरी ओर झुक गया । पवित्रतम संस्कार-सागर में, जीवन के घात-प्रतिघात से गुजरती हुई, उस गांव की गौरी ने अपनी इह लीला समाप्त की और उस समाज में, जिसकी चरित्र और वर्ग-एकता की धारा सूख गयी थी, शुचिता और शक्ति की नदी फिर से बहा दी ।"[१] इन शब्दों के साथ उपन्यास का अन्त होता है जो आधुनिक युग में उठनेवाले नये स्वरों की ओर संकेत करता है ।

(८) चुनाव और गुटबन्दियाँ: चुनाव के हथकण्डों का प्रयोग अब गांवों में भी बढ़ने लगा है । 'अलग अलग वैतरणी' में जैपालसिंह सुरजूसिंह को हराने के लिए सुखदेवराम को खड़ा करते हैं । प्रतिस्पर्द्धी के मतों को तोड़ने के लिए वे स्वयं भी चुनाव लड़ते हैं । इस प्रकार अपने गुर्गे-सुखदेवराम को जिताया जाता है । इसी प्रकार 'नदी फिर बह चली' में चुनाव की सरगर्मियों में जातिवाद का भी प्रयोग होता है । मुखिया के चुनाव में जब जनार्दनराय का मैट्रिक फेल भतीजा खड़ा रहता है तब राजपूत दल प्रचा प्रचार करता है :" यदि हम लोगों ने जनार्दनराय के भतीजे को मुखिया चुन लिया, तो राजपूतों का हाल कुत्तों का हाल हो जायगा । अगर जात और मूंछ की लाज रखनी है, तो राजपूत को मुखिया बनाओ ।"[२] फलत: राजपूत उम्मीदवार बाबू तेगासिंह मुखिया चुन लिये जाते हैं, परन्तु बाद में इसी गुटबन्दी के कारण बाबू तेगासिंह का खून भी होता है ।[३]

'जल टूटता हुआ' में सतीश और रामकुमार को हराने के लिए हर सम्भव कोशिश की जाती है । जमींदार महीपसिंह के भय से अनिच्छा होते हुए भी मास्टर सुग्गन को चुनाव लड़ना पड़ता है, क्योंकि महीपसिंह सतीश के मतों को तोड़ना चाहते हैं । महावीर को भी इसीलिए खड़ा किया जाता है । सतीश के बारे में दलसिंगार झूठी मन-गढ़न्त बातें फैलाता है कि सतीश महीपसिंह के यहां नौकरी करता था तब हिसाब में अनेक गोटाले किये थे । रामकुमार 'कम्युनिस्ट' था, अत: उसे धर्मभ्रष्ट बताया जाता है । कुंजू सतीश का प्रचार करता है । अत: उसकी बदनामी के लिए दारोगा से मिलकर दलसिंगार तथा दीनदयाल षडयन्त्र

---

१. 'नदी फिर बह चली' : पृ० ४१० । २. वही : पृ० ३६५ ।
३. देखिए : वही : पृ० ३८० ।

रचते हैं। दीन दयाल चुनाव-स्थल पर गट्टे और गुड़ की दूकान लगवा देते हैं। मउगा दलसिंगार कमर नचाता हुआ आरतों के झुंड में प्रचार करता फिरता है।[1]

'राग दरबारी' में कालेज के मैनेजर का चुनाव गुण्डागर्दी और तमचे के बल पर होता है। सनीचर जैसे निहायत अभद्र,अशिक्षित एवं मूर्ख व्यक्ति को सरपंच बनाकर वैद्यजी असली सत्ता को हस्तगत करना चाहते हैं। चुनाव के विभिन्न हथकण्डों का व्यंग्यात्मक चित्र उपस्थित करने के लिए लेखक ने इसमें 'चुनाव-संहिता क' तीन तरकीबें बतायी हैं: एक रामनगरवाली, दूसरी नेवादावाली और तीसरी महिपालपुरवाली जिनमें क्रमश: फौजदारी द्वारा विरोधी गुट के प्रभावशाली तत्वों को जेलमें भिजवाकर एक पक्षीय प्रचार-कार्य, किसी महात्मा को निमन्त्रित कर उनके द्वारा भविष्य-कथन, चुनाव के अधिकारियों को अपने पक्ष में लेकर सीमित समय में मतदान संपन्न करवाना जैसी युक्तियों को काम में लाया जाता है।[2] सनी-चर महिपालपुरवाली तरकीब से विजयी हुए थे।

इन राजनीतिक गुटबन्दियों का बड़ा ही जटिल स्वरूप 'सूखता हुआ तालाब' में दृष्टिगत होता है। स्त्री-पुरुष के यौन-सम्बन्ध तथा भूत-प्रेत एवं ओझा-सोखागिरी भी यहां राजनीति द्वारा परिचालित होते हैं। देवप्रकाश के भाई अवतार को पड़ोसी गांव की पासिन के साथ पकड़वाकर उनके परिवार को पट्टीदारी से बहिष्कृत किया जाता है, इसलिए नहीं कि गांव के नेताओं में नैतिकता का कोई ऊंचा मूल्य है: बल्कि इसलिए कि देवप्रकाश शिवराम, शामदेव तथा धर्मेन्द्र जैसे लोगों के गुट में मिलना नहीं चाहते थे। धर्मेन्द्र की बहिन लीला को पड़ोसी गांव के अहिर रमदौना के साथ भगाने की बात देवप्रकाश अपने पुत्र रवीन्द्र से इसलिए करते हैं कि उससे उनके प्रतिस्पर्द्धियों का मुंह काला होगा। मोती-लाल को नीचा दिखाने के लिए बनारसी जलेसर की सहायता से 'पेट महुआ' वाले प्रसंग को जान-बूझकर योजनाबद्ध तरीकों से उभारते हैं।[3] तात्पर्य यह कि ग्राम्य देवी-देवताओं (डीह बाबा) आदि को भी राजनीति में घसीटा जाता है।

---

१. 'जल टूटता हुआ' : पृ० ३०८।

२. देखिए : 'राग दरबारी' : पृ० २६२-२७१।

३. 'सूखता हुआ तालाब' : पृ० ४५-४६।

(६) स्त्री-पुरुषों के अनैतिक सम्बन्ध : (Adulteration) :

पूर्ववर्ती विवेचन में स्पष्ट किया जा चुका है कि ग्रामीण परिवेश में वातावरण के प्रभाव के कारण लड़के-लड़कियों में यौन-सभानता शीघ्र ही आ जाती है। 'अलग अलग वैतरणी' के मास्टर शशिकान्त ग्रामीण-जीवन में फैल रही इस जातीय अनैतिकता के कारणों का विश्लेषण करते हुए गरीबी, तंगदिली और दमघोंट सन्नाटे को उसके मूल में बताते हैं। जिस प्रकार बीमार मनुष्य को सहज-सामान्य खाना अच्छा नहीं लगता, और चटपटी चीजें अच्छी लगती हैं उसी प्रकार कुछ लोगों को अनैतिक सम्बन्धों से ही तुष्टि मिलती है। उनकी स्थिति उस कुत्ते-सी होती है जिसे हड्डियों को चचोरते हुए अपना ही खून स्वादिष्ट लगने लगता है।[१]

नागार्जुन के 'उग्रतारा' उपन्यास में नर्मदेश्वर की भाभी अनैतिक जातीय व्यापार के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहती है : "स्त्री-पुरुषों में समान रूप से समझदारी पैदा होगी और मनोरंजन के कई और साधन निकल आएंगे तभी व्यभिचार घटेगा। देहात में खाते-पीते परिवारों के अधेड़ भारी मुसीबत पैदा करते हैं।"[२] इस प्रकार गरीबी, जहालत, मनोरंजन के साधनों की कमी तथा संपन्न घरों के प्रौढ़ पुरुषों की विलासी वृत्ति आदि इस अनैतिकता के मूल में है। वैसे परस्त्री का आकर्षण आदि-अनादि काल से चला आ रहा है, अन्यथा हमारे सन्तों को उसकी तीव्र वर्जना न करनी पड़ती। काव्यशास्त्र के ग्रन्थों में भी नायिका-भेद प्रकरण में परकीया के जितने भेदोपभेद उपलब्ध होते हैं, उतने स्वकीया के नहीं। पर पहले इन सम्बन्धों में गोपनीयता एवं निबाहने की वृत्ति का जहाँ आधिक्य रहता था वहाँ आजकल प्रचार, प्रदर्शन एवं गैरजिम्मेदारी का आधिक्य बढ़ रहा है।[३]

स्त्री-पुरुषों का यह अनैतिक व्यापार गांवों में अनेक रूपों में मिलता है। निम्न वर्ग की गरीब बहू-बेटियों के साथ उच्च वर्ग के धनी-संपन्न लोगों के सम्बन्ध तो आम बात है और उसे प्राय: गांव के अन्य लोग भी जानते-समझते हैं। कई बार उच्च वर्ग की स्त्रियों के साथ उनके नौकरों के जातीय

---

१. देखिए : 'अलग अलग वैतरणी' : पृ० ४५५।

२. 'उग्रतारा' : पृ० ३६। ३. देखिए : 'अलग अलग वैतरणी' : पृ० ४५४।

सम्बन्ध भी रहते हैं, परन्तु वहां उन सम्बन्धों में अत्यधिक गुप्तता का निर्वाह किया जाता है। रहस्य खुल जाने पर पुरुष की बुरी तरह से धुनाई होती है, यथा, 'जल टूटता हुआ' में हसिया और पार्वती के सम्बन्ध में गांववाले हसिया को खूब मारते-पिटते हैं।

रेणु के 'जुलूस' में इस यौन अनैतिकता का एक नया कोण उपलब्ध होता है। तालेवर गोढ़ी निम्न जाति का है, परन्तु पैसे के बल पर उसने गांव पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया है और तन्त्र-मन्त्र एवं साधना के नाम पर गांव की सवर्ण लड़कियों को जयरामसिंह द्वारा फंसाता है। एक स्थान पर वह जयरामसिंघ को कहता है : "हम जो साधना करते हैं उसके लिए औरत बहुत जरूरी है। तन्त्र सिद्ध करने के लिए 'भैरवी' का होना बहुत जरूरी है।"[1] 'गुणमन्ती, रेशमी सिंगारो, गौरी यह सब उसकी भैरवियां रह चुकी हैं।[2] अपनी पतोहू से भी उसका लाटसाट चल रहा है।[3] बुढ़ापे में भी एड़ी तक केशवाली किसी बंगाल देश की भैरवी का मोह संवरण नहीं हो सका है।[4]

उसी उपन्यास में दीपा की मां सरस्वती रामगंज-पिपरा में अध्यापिका थी तब एक स्कूल इन्स्पेक्टर ने उसे प्रधान अध्यापिका बनाने की लालच देकर 'प्रेगनेण्ट' बना दिया था। बाद में गांव के ही एक युवक पारसप्रसाद, (जिसे व्यंग्य में लोग पारसलप्रसाद कहते हैं।) की सहायता से एक अंग-भंग व्यक्ति से उसका विवाह हो जाता है। थोड़े ही महीनों में पारसप्रसाद की ही सहायता से वह विधवा भी हो जाती है। किसी हट्टे कट्टे नौजवान से एकान्त में आमने-सामने होने पर उसकी 'रीढ़का दर्द' चिनचिनाता है।[5] पारसप्रसाद, पहलवान जेठ, कारे (नौकर) मण्डल तथा रामजयसिंह आदि से वह इसका इलाज करवाती है। कांग्रेस के एक स्थानीय नेता छोटन बाबू के सम्बन्ध में वह कहती है : "रामदेव बाबू लोकल बार्ड के चेरमैन आर यह शैतान उसका दलाल। कितनी मास्टरनियों को डाक बंगला तक भुलावे में डालकर ले गया -- इसका हिसाब उससे किसी दिन भगवान ही पूछेंगे।"[6] इस प्रकार के अनैतिक व्यापारों में बेकारी मुख्य कारण है। कई बार स्कूल अध्यापिकाओं तथा ग्राम-सेविकाओं को न चाहते हुए भी गांव के बड़े लोगों से ऐसे सम्बन्ध रखने पड़ते हैं।

---

१. 'जुलूस' : पृ० ३६। २. द्रष्टव्य : वही : पृ० ८४। ३. द्रष्टव्य : वही : पृ० ८६। ४. द्रष्टव्य : वही : पृ० ३६। ५. वही : पृ० ११६। ६. वही : पृ० ५९

नागार्जुन के उपन्यास 'इमरतिया' में जमनिया के मठ में चलनेवाले अनैतिक व्यापारों की पोल खोली गयी है। पूर्ववर्ती पृष्ठों में निर्दिष्ट किया जा चुका है कि जमनिया मठ से पुलिस अफसरों को गौरी जैसी खूबसूरत सधुआइनें 'सप्लाय' होती थीं, ताकि मठ में चलनेवाले अनाचारों पर पर्दा पड़ा रहे। निःसन्तान स्त्रियों को बेंत छुआकर उसकी गोद हरी करने के पीछे भी लालताप्रसाद, भगौतीप्रसाद, सुखदेव, रामजनम जैसे मठ के कर्ता-धर्ता लोगों की एक पूरी 'मशीनरी' काम करती थी। "यही लोग ठूंठ की कोख से पौधा पैदा करने की विद्या जानते थे। पत्थर पर दूब जमाने की हिकमत इन्हीं लोगों को मालूम थी।"[१]

'सूखता हुआ तालाब' में इन अनैतिक सम्बन्धों के पीछे राजनीतिक गुटबन्दियों का एक नया आयाम दृष्टिगत होता है। शिवलाल की लड़की कलावती को जब अपनी ही पट्टीदारी के मास्टर धर्मेन्द्र (रिश्ते में भाई) से गर्भ रहता है तब उसका भाई चुप ही नहीं रहता बल्कि उसका समर्थन भी करता है क्योंकि धर्मेन्द्र उनके गुट में है।[२] बाद में इसी प्रसंग को लेकर विरोधी गुट के देवप्रकाश के लड़के रवीन्द्र को फंसाने के लिए पुलिस के दरोगा को बुलाया जाता है। अर्थात् जिस बात के लिए पहले लोग मरने-मारने के लिए उतारू हो जाते थे या कम से कम छिपा ही ले जाते थे उसको अब राजनीतिक हथियार बनाया जाता है। धर्मेन्द्र की बहिन लीला पड़ोसी गांव के अहिर युवक रामदौना से जुड़ी हुई है। देवप्रकाश रवीन्द्र की सहायता से इन दोनों को भगाने की पैरवी करते हैं, इसमें भी राजनीतिक भावना काम करती है। इस उपन्यास में लोगों के अनैतिक सम्बन्धों के पर्दाफाश के लिए ओझागिरी को भी साधन बनाया ~~जनक~~ गया है।

इन सम्बन्धों के अतिरिक्त अन्य यौन विकृतियों की चर्चा पूर्ववर्ती पृष्ठों में की जा चुकी है।

(१०) रस्मो-रिवाज तथा मान्यताएं : जन्म - मरण, शादी-ब्याह, जनेऊ-मंगनी-गौना, तीज-त्यौहार आदि को मनाने की विशिष्ट शैली या रूढ़ि को रस्म या रिवाज कहते हैं। यद्यपि भारतीय जन-मानस उत्सव-प्रिय है, तथापि

---

१. 'इमरतिया' : पृ० १९७। २. द्रष्टव्य : "मान लो धर्मेन्द्र ने कुछ किया ही है तो घर में ही न किया है, किसी कुजाति के यहां नहीं न किया है।"
: 'सूखता हुआ तालाब' : पृ० ९९।

नगरीय दबाव ज्यों ज्यों बढ़ रहा है गांवों में भी अब उत्सव आदि की उमंग और हिलोरें विसर्जित हो रही हैं। अलग अलग वैतरणी`, जल टूटता हुआ`, `सूखता हुआ तालाब` प्रभृति उपन्यास में इस परिवर्तित ग्रामीण मुद्रा को देखा जा सकता है। लोकगीतों, भक्त-कवियों के पदों और भजनों का स्थान अब फिल्मी गीतों या फिल्मी धुनों पर आधारित भजनों ने ले लिया है। मेले-ठेलों का उत्साह भी अब पूर्ववत् नहीं रहा।

`जल टूटता हुआ` में डा० रामदरश मिश्र ने फागुन और होली की इस बदलती तस्वीर पर गहरे दर्द एवं रंज के साथ लिखा है :" उसे याद आया अपने बचपन का फागुन। खिचड़ी शुरू होते ही... सरसों की पीली रंगीनी उगते ही खेतों में, गांवों में एक अटूट मस्ती छा जाती थी। फागुन आने के पहले ही आ जाता था। खेत, पगडण्डियां, गांव सभी में एक अल्हड़ मस्ती उड़ने लगती थी, गीतों की फसल झूमने लगती थी और अब धीरे धीरे सब खतम हो रहा है, किसी को राग-रंग की फुरसत नहीं, रागरंग को लोग बेकार की चीज़ समझने लगे हैं। लड़के पढ़ने लगे हैं, शहरों से आते हैं तो अधकचरा शहरीपन लेकर आते हैं। वे समझते हैं कि देहाती राग-रंग असभ्यता है, देहातीपन है। वे सिनेमा के गाने गायेंगे होली नहीं। वे शरीफ बनने के चक्कर में तटस्थ दृष्टा हो गये हैं, साबुन से धुले उनके शरीर पर कोई गोबर न डालने पाये और देहात के लोग हैं जिन्हें अब अपने काम से फुरसत ही नहीं मिलती, अपने व्यवसाय-धन्धे और खेती-बारी में कामों में पिसते रहने और एक दूसरे से बढ़कर चालाकी करने में उनमें होड़ मची है। अब वे जिन्दगी के राग-रंग को अढ़ुओं और निकम्मों का काम समझने लगे हैं, सौन्दर्य और आनन्द इनके हाथ से छूटता जा रहा है जो पहले के लोगों की अभावग्रस्त जिन्दगी में भी एक उल्लास और मूल्य भरता था।... पहले जो पर्वों त्यौहारों और गांव के उत्सवों में सम्मिलित रूप से भाग लेने का उत्साह था वह आज मूल्यहीन मान लिया गया है। लोग इन अवसरों पर दो क्षण के लिए फर्ज़ अदायगी के तौर पर शामिल होते हैं और तब भी उनका मन अपने स्वार्थ में ही अटका होता है। लड़की की शादी हो रही है पर पट्टीदार खेत में काम कर रहे हैं और शाम को बारात आने के समय फर्ज़ अदायगी के लिए पट्टीदार के यहां जाते हैं, हाजिरी देकर चले आते हैं और हर आदमी अब अपने-अपने उत्सवों व कामों का बोझ अकेले कन्धे पर उठाये छटपटाता है, ये उत्सव उत्सव न रहकर अब बोझ बनते जा रहे हैं, सामूहिकता खण्ड-खण्ड में बंटकर इकाइयों में छटपटा रही है।"[1]

१. 'जल टूटता हुआ' : पृ. ३४३-३४४।

शादी-विवाह, जनेऊ तथा मरण आदि प्रसंगों में पट्टीदारों, सगे-सम्बन्धियों तथा गांव के अन्य सम्बन्धित लोगों को खिलाने-पिलाने का रिवाज ह प्रचलित है, परन्तु अब इनमें भी राजनीति का प्रवेश हो गया है। `सूखता हुआ तालाब` में इन भोजों के पीछे चलनेवाली राजनीति का सुन्द बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है।

जाति से बहिष्कृत होने का डर भी ग्रामीण लोगों में अधिक रहता है। उसमें भी राजनीति खेली जाती है और गरीबों का शोषण होता है। मिथु श्रीवास्तव के उपन्यास `नदी फिर बह चली` में परबतिया मेले में कहीं खो जाती है। दो बदमाश उसका पीछा करते हैं, परन्तु सदभाग्य से एक अच्छे परिवार में उसे आश्रय मिल जाता है। दो-एक दिनों में जब वह अपने परिवार में सही-सलामत लौट आती है तो विमाता के बुरे व्यवहार के कारण उसकी बदनामी होती है। फलत: उसके पिता साधु महतो के यहां पंचायत बैठती है। पंचों के लिए गांजा, भांग, खैनी और बीड़ी का सारा इन्तज़ाम साधु महतो को ही करना पड़ता है। दो घण्टे पंचायत चलती है और अन्तत: पांच रूपया जुर्माना और बिरादरी के सभी लोगों को एक वक्त कच्ची और एक वक्त पक्की खिलाने का फैसला होता है। बेचारा साधु महतो परबतिया की स्वर्गस्थ मां फुलफड़िया का एक कंठा बंधक रखकर बिरादरी को कच्ची-पक्की खिलाकर बिरादरी में पुन: प्रवेश पा जाता है। समाज या जाति के महन्तों की यहां भी बन आती है।

ग्रामीण परिवेश के विविध रिवाजों की दृष्टि से `नदी फिर बह चली` एक विशिष्ट उपन्यास है। बिहार की पिछड़ी हुई जातियों में भी तिलक का रिवाज है। परबतिया की शादी में इक्कीस रूपया तिलक चढ़ाया जाता है। शादी के पहले तिलक चढ़ाने के लिए लड़कीवाले लड़केवाले के यहां जमते जाते हैं। उसके बाद से गीतहारिनें जुट जाती हैं। भांति-भांति के गीत गाये जाते हैं। आंगन में `मड़वा` (मण्डप[१]) गाड़ा जाता है। देहातों में शादी की प्रत्येक रस्म गीतों से ही पूरी होती है। जब बारात आती है तब सोहागिनें गाती हैं --

चकुनी जे हंथिया के दरद अमरिया है,
ताहि चढ़ी आयेल, दमाद अलबेलवा है।

---

१. गुजराती में इसे `मांडवो` कहते हैं।

सासुजी के आँखिया लागत मधुमखिया है
परिछन चलली, दमाद अलबेलवा है ।[1]

कुछ गीतों में गालियाँ भी होती हैं, परन्तु कोई इसका बुरा नहीं मानता । गुजरात में ऐसे गीतों को `फटाणा` कहते हैं । प्रस्तुत उपन्यास में भी ऐसा एक गीत आया है --

कंठा देख-देख, मत भूलिह हो , बाबा कंठा है मांगन की ।
ल ड़िका है छिनार के जामल, लड़की है जिमदार की ।"[2]

जब बारात दरवाजे पर आ जाती है तब दामाद को पूजने और सलामी लेने की विधि होती है । विवाह की अन्य विधियाँ रात में होती हैं । अन्त में लड़की की मांग में सिन्दूर भरा जाता है । उत्तर प्रदेश तथा भारत के अधिकांश प्रान्तों में विवाह के दूसरे दिन बिदा होती है और डोली (अब मोटर) में बैठकर लड़की ससुराल जाती है, परन्तु बिहार में विवाह के तुरन्त बाद लड़की ससुराल नहीं जाती । दुल्हासहित बारात लौट जाती है । फिर कुछ समय बाद गौना होता है ।[3] गौने के बाद लड़की का भाई `चउठारी` लेकर आता है । तब लड़केवाले भी उसे कुछ कपड़ा आदि देते हैं ।[4]

जिस प्रकार गुजरात की कुछ जातियों में नवविवाहित लड़की के साथ उसकी कोई अविवाहित बहिन या सहेली कुछ दिनों के लिए जाती है जिसे `अरमानिया` कहा जाता है उस प्रकार लड़के के साथ जो जाता है `सहबाला` कहते हैं । `नदी फिर बह चली` में भवानी नामक एक लड़का किसी विवाह में लड़के का (दूल्हे का) सहबाला बनकर जाता है ।[5]

शादी-व्याह की भांति मरण में भी कुछ रिवाजों का पालन करना पड़ता है । किसी `एहवातिन` (सौभाग्यवती) स्त्री का निधन होता है तो उसकी मांग में सिन्दूर भरकर उसे तैयार किया जाता है ।[6] फिर उसके खोंइछे (अंक) में अरवे चावल और लड्डू भरे जाते हैं ।

डा० राही मासूम रज़ा के उपन्यास `आधा गांव` में मोहर्रम के त्यौहार का — उसकी महीनों पहले होनेवाली तैयारियाँ, अलग अलग मजलिसें, उनमें यतीम के हिस्से का ~~निलम्म~~ नीलाम होना, उनमें पढ़े जानेवाले नौहे और मरसिये, `इमाम हुसैन` का नाम आते ही लोगों का फूट फूट कर रो पड़ना, मरसिया गाते-गाते बीच में गश्त खाकर गिर जाना, उसके लिए बब गर्व और

---

१. `नदी फिर बह चली`: पृ.१८५ । २. वही : पृ.१८६। ३. वही: पृ.२३५ । ४. वही: पृ. २५८
५. वही: पृ.१४० । ६. वही : पृ.२२ ।

स्पर्द्धा की भावना तथा महीनों पहले से अभ्यास करना -- आदि का खूब ब्यौरे-वार वर्णन उपलब्ध होता है।

गुलशेरखान शानी कृत 'काला जल' मुस्लिम समाज का जीवन्त दस्तावेज है। इसी एक उपन्यास से ही मुस्लिम समाज, उसके सारे रस्मो-रिवाज़ तथा उनकी बारीकियों को भलीभाँति समझा जा सकता है। शबेबरात की फातिहा और उससे उभरती हुई स्मृतियों के रूप में समूचे उपन्यास का ताना-बाना बुना गया है। हिन्दुओं के श्राद्ध-पक्ष की भांति शबेबरात में मृतक के लिए फातिहा पढ़ी जाती है।[1] मुसलमानों में इस रात का बड़ा महत्व होता है। यह रात इबादत और दुआ की रात कहलाती है। अज़ाब-गुनाहों से तौबा करने का बेशक़ीमत मौका उस रात मिलता है। उस रात जन्नत के दरवाजे खुले होते हैं और उस एक रात की इबादत चार सौ बरस के सिज्दे के बराबर होती है।[2] लोबान और ऊददानी से वातावरण महक उठता है। मृतकों की फेहरिस्त निकाली जाती है। एक-एक करके सबके लिए फातिहा पढ़ा जाता है। रोटियां, हलुवा, तथा मृतक को भाने-वाली या उसके शौक की चीज़ें रखी जाती हैं।[3] फातिहा के बाद परस्पर सम्बन्धि-यों में रोटी-हलुवे का हिस्सा पहुंचाने का भी दस्तूर है।[4]

मृत्यु होने पर यासीन सुनाया जाता है।[5] मुसलमानों में मृतक के पीछे रोने-धोने का रिवाज़ नहीं है। ऐसा माना जाता है कि उससे मृतक की रूह को तकलीफ़ होती है और रोनेवाले को अज़ाब (गुनाह) लगता है।[6] मृत व्यक्ति को दफ़नाने से पहले गुसल (स्नान) दिया जाता है। जिस स्थान पर गुसल दिया जाता है उसे लहद कहते हैं और चालीस दिन तक वहां दीया जलाया जाता है।[7] जैसे हिन्दुओं में कई बार कहा जाता है कि अभी तो उसकी चिता भी ठंडी नहीं हुई उसी प्रकार मुसलमानों में ऐसे अवसरों पर कहा जाता है कि अभी तो उसके लहद की मिट्टी भी नहीं सूखी। हिन्दुओं में जिस प्रकार मृत्यु के बारहवें-तेरहवें दिन ब्रह्मभोज होता है जिसमें सगे-सम्बन्धियों को भी खिलाया जाता है उसी प्रकार मुसलमानों में चालीसवे दिन चहल्लुम होता है जिसमें बकरे ज़िबह किये जाते हैं और

---

१. 'काला जल' : पृ० १६। २. वही : पृ० २१। ३. वही : पृ० ३५-३६। ४. वही : पृ० ३१। ५. वही : पृ० ४६। ६. वही : पृ० ४८। ७. वही : पृ० ४६।

पुलाव आदि बनता है।[१] जिस प्रकार हिन्दुओं में पति के रहते मरनेवाली स्त्री भाग्यशाली समझी जाती है और उसके मृत देह को सौभाग्यवती स्त्री के सभी श्रृंगार किये जाते हैं उसी प्रकार मुसलमानों में भी ऐसी बीबी को नसीबोंवाली माना जाता है और उस पर लाल तूस की चादर ओढ़ायी जाती है।[२]

हिन्दुओं की तरह मुसलमानों में भी पहली शादी में सुहाग गीत, हंसी-चुहल, विविध रस्मों व नेगों तथा गालियाँ (गीत) आदि से वातावरण उल्लासमय हो जाता है, किन्तु दूसरी शादी में (पुनर्विवाह में) ज्यादा चहल-पहल नहीं होती। दुल्हन को मज्जूर से ढंका जाता है जिसका सिरा धरती तक खींचा रहता है। हिन्दुओं की पाणि-ग्रहण विधि में अनेक मन्त्र होते हैं, जिनमें सप्तपदी का विशेष महत्व होता है, जबकि मुसलमानों में निकाह की विधि अत्यन्त सरल है। नीचे एक उदाहरण दिया जा रहा है : "मरदाने में क़ाज़िए-शहर नौशे मियां रज्जू से कहता है : 'जनाब मिर्ज़ा करामत बेग की बेवा, बनाम इस्लामबी, बवकालत अब्दुल सत्तार साहब, हमराह दो गवाहों के, मेहर मुबलिग़ पांच सौ रूपये, सिक्कये राजुल वक़्त, अवाला नान-नफ़्फ़ा के आपके निकाह में दी गई, क्या आपने क़बूल किया ?' .., दुल्हन तीन बार दुहराती है, 'क़बूल किया मैंने अपने निकाह में।"[३] इस विधि के बाद मिश्री-छुहारे लुटाए जाते हैं जिसमें आबालवृद्ध सभी हिस्सा लेते हैं। जिसके हाथ में कुछ आ जाता है वह मुसकराते हुए उसे चबाता है और जिसके हाथ में कुछ नहीं आता वह मायूस होकर इधर-उधर टटोलता है।[४]

~~जब बरात आती है~~ शादी-ब्याह में दूल्हे के साथ अनेक प्रकार के हंसी-मज़ाक चलते हैं। कई ऐसे नेग होते हैं जिनमें विनोदवृत्ति की ही प्राधान्य होता है। शानीजी ने भी ऐसे अनेक 'नेगों' तथा रस्मों का वर्णन इस उपन्यास में किया है। जब बारात आती है तब मेंहदी का एक बड़ा पौधा नौशेमियां के सामने लाया जाता है। बीच में पर्दा किया जाता है। दूल्हे की कोशिश उछलकर मेंहदी की पत्तियों को तोड़ने की होती है जबकि दुल्हनवाले चाहते हैं कि वह ऐसा न कर पावें।[५] फिर गुलाब की एक लम्बी टहनी फूलों में लपेटकर लायी जाती है और परदे की आड़ से दूल्हे को मारने की कोशिश चलती है। दूल्हा होशियारी

---

१. 'काला जल' : पृ० ४७-४८ । २. वही : पृ० ६१ । ३. वही : पृ० ६५ ।
४. वही : पृ० ६५ । ५. वही : पृ० ६७ ।

से उस टहनी को छीनने का प्रयास करता है, परन्तु उसमें उसके हाथ में प्राय: खरोंच आ जाती है।[1] दुल्हन के प्रथम गृह-प्रवेश के समय के कुछ नेग भी उल्लेखनीय हैं, जैसे दूल्हा-दुल्हन दोनों के हाथों में ~~सन्दल~~ सन्दल (चन्दन) लगाना, दुल्हन का सन्दलवाला हाथ चौखट पर ऐसे रखना कि निशान रह जाय, मुहल्ले-पड़ोस के लोगों का राह रोककर अड़ जाना, दूल्हा-दुल्हन की अलग-अलग पार्टियाँ बनाकर गिलास से चावल को सात बार नापना, बीच में चावल की लुका-छिपी मचाना, तब किसी पक्ष में चावल ~~की~~ कमी पड़ने पर उनसे यह कहलवाना कि मेरे बाल-बच्चे भूखे मर रहे हैं, आधा सेर चावल उधार दो।[2]

एक-दो दिन के बाद जब दुल्हन मैके जाती है तब दूल्हे को चौथी के दस्तूर के लिए बुलाया जाता है जिसमें चटाई पर हरी भाजी के ढ़ेर में गुलाब की पंखुड़ियां नोंचकर मिला दी जाती है और फिर दोनों में स्पर्द्धा चलती है कि किस के हिस्से में फूल अधिक आते हैं और किसके हिस्से में पत्तियां।[3] चौथी के बाद दुल्हन पुन: ससुराल जाती है जहां कुछ दिनों बाद 'हाथ बरतानी' का दस्तूर होता है। इस दस्तूर के बाद दुल्हन चूल्हे-चौके का काम कर सकती है।[4]

जिस प्रकार हिन्दुओं में सत्यनारायण की कथा, सुन्दर काण्ड या कोई धार्मिक अनुष्ठान होता है उसी प्रकार मुसलमानों में भी मीलाद होतो है जिसमें सब सगे-सम्बन्धी मिलते हैं।[5] इस प्रकार के अनेक रिवाज़ इस उपन्यास में वर्णित हुए हैं। रज़ा के एक अन्य उपन्यास 'दल एक सादा कागज़' में विवाह के समय की गालियों का बड़ा ही मनोरंजक वर्णन उपलब्ध होता है।

शानी के ही एक अन्य उपन्यास 'सांप और सीढ़ी' में उड़ीसा के बस्तर जिले की कुम्हार जाति का एक विचित्र रिवाज़ मिलता है। वर-वधू में तालाब के घुटने भर पानी में दीये छिपाकर ढूंढने की स्पर्द्धा चलती है। उसके बाद लड़के को तीर-धनुष दिया जाता है। घर और तालाब के बीच की दूरी धनुष के द्वारा ~~तीर-फेंककर~~ सात तीर फेंककर तय करना पड़ती है और न कर सकने की स्थिति में बाकी फासला दुल्हन को पीठ पर लादकर तय करना पड़ता है।[6]

---

१. 'काला जल' : पृ० ६७। २. देखिए : वही : पृ० ६३-६४। ३. वही : पृ० १०१। ४. वही : पृ० १०५। ५. वही : पृ० १२८। ६. देखिए : 'सांप और सीढ़ी' : पृ० ७८-७९।

लक्ष्मीनारायण लाल के उपन्यास 'प्रेम अपवित्र नदी' में दिल्ली के 'कपूरवाले' परिवार की एक बेहूदा प्रथा का उल्लेख मिलता है। कपूरवाले परिवार का कोई भी विवाहित व्यक्ति जब प्रथम बार हरद्वार जाता है तब गंगाघाट पर वह अपनी पत्नी पण्डे को दान में दे देता है और बाद में मुंहमांगी रकम देकर वह उसे पण्डे से वापिस ले लेता है। इस प्रकार आलोच्य उपन्यासों में परिवेश के अनुरूप भांति भांति की रीतियां ~~एवं मान्यताएं~~ उपलब्ध होती हैं।

<u>मान्यताएं</u> : आस्थाएं और मान्यताएं किसी भी देश के सांस्कृतिक जीवन में बड़ी गहराई से प्रतिष्ठित हैं। हमारा देश अत्यन्त विशाल है जिसके अलग-अलग प्रदेशों में धर्म, सम्प्रदाय, जीवन-रीति प्रभृति से सम्बन्धित भांति-भांति की मान्यताएं प्रचलित हैं। कहीं कहीं दो प्रदेशों की मान्यताओं में समानता तो कहीं कहीं परस्पर विरोध भी मिलता है, यथा गुजरात में एक आम मान्यता है कि बुधवार को कहीं बाहर नहीं जाते, इसके विपरीत उत्तर प्रदेश में गुरुवार के दिन बाहर जाना वर्जित माना गया है। चर्चित उपन्यासों में भी हमारे समाज में प्रचलित ऐसी अनेक मान्यताएं उपलब्ध होती हैं, जिनमें से कुछ को नीचे लक्ष्य किया जा रहा है : (१) मन्त्र-तन्त्र, जादू-टोना या झाड़-फूंक विषयक मान्यताएं, (२) सामाजिक, धार्मिक, स्वभाव-शील सम्बन्धी, शकुन और नज़र विषयक मान्यताएं, (३) मुस्लिम समाज की कतिपय मान्यताएं।

प्रथम कोटि की मान्यताएं 'नदी फिर बह चली', 'जुलूस' 'सूखता हुआ तालाब', 'जल टूटता हुआ' प्रभृति उपन्यासों में बहुतायत से उपलब्ध होती हैं। गांवों में कई बार भक्ति-भाव के पीछे भी भय की भावना प्रबल रूप से होती है। 'जल टूटता हुआ' में डा० रामदरश मिश्र ने ऐसी भय-प्रेरित भूत-पूजा पर व्यंग्य करते हुए लिखा है : "चमार चमरिया पूजता है, ब्राह्मण बरम पूजता है, क्षत्री डीह पूजता है, मुसलमान जिन्न पूजता है और सच तो यह है कि सभी एक दूसरे के भूत को पूजते हैं।"[१]

ओझा द्वारा भूत-प्रेत उतरवाने की बात तो आम है। उक्त

---

१. 'जल टूटता हुआ' : पृ० ३३७।

उपन्यासों में एकाधिक स्थानों पर इसका उल्लेख मिलता है। शहरों में जैसे डाक्टरों और वकीलों की प्रेक्टिस चलती है, वैसे गांवों में इन ओझाओं की भी बड़ी धूम प्रेक्टिस चलती है। गांव जितना ही पिछड़ा होगा, इन ओझा डाक्टरों की वहां उतनी ही चांदी होती है। यहां एतद्विषयक कुछ मान्यताओं को उपन्यासों से संगृहीत किया गया है :

(१) गांवों में मन्त्र-तन्त्र से भाड़-फूंककर सांप उतारे जाते हैं। अधिकांश सांप जहरिले न होने से मनोवैज्ञानिक प्रभाव से व्यक्ति को ठीक हो जाता होगा। 'जल टूटता हुआ' में ऐसे दो प्रसंग आते हैं जिनमें प्रथम में व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है और दूसरे में व्यक्ति को ठीक हो जाता है।[१] (२) मिश्रजी के ही एक अन्य उपन्यास 'सूखता हुआ तालाब' में 'पेट महुआ' नामक एक नये प्रेत की बात आती है। अवैध गर्भ को जब पेट मांडकर गिरा दिया जाता है तब गर्भस्थ जीव भूत बनता है, जिसे 'पेट महुआ' कहा जाता है। (३) गांवों में ओझा की परीक्षा के लिए गोला भरवाने की प्रथा भी प्रचलित है। गोले में कोई चीज़ रखी जाती है और फिर ओझा से उसका नाम पूछा जाता है। (देखिए 'सूखता हुआ तालाब' : पृ० ७०) (४) कुछ लोग अपनी व्यक्तिगत वासना-पूर्ति के भी तन्त्र-मन्त्र का सहारा लेते हैं। साधना में अमुक प्रकार की औरतों या अक्षत-यौवना कुमारियों को भैरवियां बनाकर अपना उल्लू सीधा किया जाता है। 'जुलूस' का तालेवर गोढ़ी अपनी वासना-पूर्ति हेतु तन्त्र-मन्त्र का ही सहारा लेता है। (देखिए : पृ० ३६-३८-३९), (५) इसी उपन्यास में बताया गया है कि तन्त्र-मन्त्र के लिए फेनायल से धोयी हड्डियां नहीं चल सकती क्योंकि उस पर ओझा का कोई 'गुण' नहीं चढ़ सकता। (पृ०३८), (६) गांवों में तन्त्र-मन्त्र में सिद्ध औरत को 'डायन' या 'टोन्ही' कहा जाता है। यदि किसी को बच्चा नहीं होता तो उसकी अनुर्वरता का दोष भी डायन के सिर मढ़ा जाता है। गांव की ऐसी सभी बहुएं उसे प्रसन्न रखना चाहती हैं क्योंकि वे मानती हैं कि जिस दिन वह 'ढर' जायगी 'कोख' दे देगी वापस। (जुलूस' : पृ० ६९), (७) गांवों में ऐसी मान्यता है कि टोनही जब रात में शिकार के लिए निकलती है, तो बिल्कुल नंगी होती है। वह अपने

---

१. 'जल टूटता हुआ' : पृ० ४२ और ५२२।

मुंह में कोई जड़ी रखती है जिसकी वजह से कदम-कदम पर लार चूने लगती है और उसी लार में नीली और तेज़ रोशनी जलती-बुझती दिखाई देती है। (साँप और सीढ़ी ` : पृ० ८१), (८) एक ऐसी भी मान्यता है कि गठानोंवाली जाली बाँध देने से टोनही मकान के भीतर दाखिल नहीं हो पाती क्योंकि जाली की एक एक गठान गिने बिना वह भीतर प्रवेश नहीं कर सकती। (साँप और सीढ़ी, पृ० ८१), (९) गाँवों में एक ऐसी मान्यता है कि कोई गर्भवती स्त्री की यदि मृत्यु होती है तो वह चुड़इन हो जाती है, अत: उसके निवारण के लिए मृत स्त्री के तलुओं में सुए ठोंके जाते हैं और गाँव के सिवान से बाहर होने तक पीली सरसों और बालू बालू छींटना पड़ता है। (नदी फिर बह चली, पृ० २२), (१०) गाँवों में गाँव को भूत-प्रेतों के डर से मुक्त करने के लिए ओझाओं द्वारा खूँटा ठुंकवाने की प्रथा भी प्रचलित है। (उपरिवत्, पृ० ७०), (११) गाँवों में हर बीमारी का मन्त्र होता है -- बिच्छू के काटने का, साँप के काटने का, आँख में फुल्ली पड़ने का। नीचे आँखों की फुल्ली झड़वाने का एक मन्त्र दिया जा रहा है :

` जइसे जइसे झुइयां कट्टे,
ओइसे-ओइसे फुलिया कट्टे। `

(छुए से जमीन पर चिह्न काटते हुए यह मन्त्र पढ़ा जाता है। देखिए : ` नदी फिर बह चली ` : पृ० १५७), (१२) पंजाब में युवतियों पर वशीकरण करनेवाली चीज़ को ` गिद्दड़ सिंघी ` कहते हैं। ऐसी मान्यता है कि जिसके पास ` गिद्दड़ सिंघी ` होती है उस पर युवतियां मरती हैं। (धरती धन न अपना, पृ० ३०६)

द्वितीय कोटि की मान्यताओं में सामाजिक, धार्मिक, स्वभाव-शील-सम्बन्धी, शकुन और नज़र विषयक मान्यताएं आती है जो इस प्रकार हैं : (१) भागवत-कथा सुनने से सुननेवाले के पाप कटते हैं। (जल टूटता हुआ, पृ० ३३७), (२) गाँवों में एक मान्यता यह भी है कि ब्राह्मण हल नहीं चला सकता। (उपरिवत्, पृ० ३३९), (३) मूल नक्षत्र में पैदा होनेवाला बच्चा माँ-बाप के लिए भारी माना जाता है, अत: उसके बुरे प्रभाव को दूर करने के लिए सवा महीने या छ: महीने के बाद निकासन होता है जिसे ` मूर पूजने ` भी कहते हैं। (सूखता हुआ तालाब, पृ० ५२), (४) गाँवों में किसी शुभ कार्य का श्रीगणेश करने से पहले दिन उचरवाने की भी प्रथा है। उसके लिए अलग-अलग पत्रे होते हैं -- बंगला का नदिया शान्तिपुरी, बिहार का तिरहुता और काशीजी का पाजी। (जुलूस, पृ० ४७-४८), (५) बंगालियों में ऐसी मान्यता है कि साँझ के समय सूरज की

लाली के पास 'तितिरबर्मा' माने तितिर के पंख के रंग का मेघ दिखलाई पड़े तो रात में मूसलाधार वृष्टि होती है। (जुलूस, पृ० १३१), (६) ग्रामजनों में ऐसी एक मान्यता है कि चपर-चपर बोलनेवाली स्त्री शीलवन्त नहीं होती है। (उग्रतारा, पृ० ५०), (७) पंजाब के कुछ गांवों में ऐसी मान्यता है कि कोई स्नेहीजन कुछ समय बाद घर लौटे तो गृह-प्रवेश के पूर्व दहलीज़ के दोनों ओर सरसों की कुछ बूंदे छिड़क देनी चाहिए। (धरती धन न अपना, पृ० १२), (८) गांवों में भविष्य-कथन के सम्बन्ध में एक मनोरंजक खेल बच्चों में प्रचलित है। किसी के विवाह के सम्बन्ध में टिकोरे से भविष्यवाणी करवायी जाती है :

"कुल कुलबासी, मादोंमासी
---- का ब्याह किधर होगा ?"

रिक्त स्थान में व्यक्ति का नाम रखकर उक्त पद्य गाते हुए टिकोरे के बीए को उछाला जाता है। बीआ जिस दिशा में गिरता है उस दिशा में विवाह होगा ऐसा समझा जाता है। (नदी फिर बह चली, पृ० ९०), (९) गांवों में कई बार किसी स्थान विशेष पर पत्थर रखने, फूल चढ़ाने या थिथरी चढ़ाने से व्यक्ति की मनोकामना पूर्ण होती है ऐसा माना जाता है। 'राग दरबारी' का रंगनाथ शिवपालगंज के निकट के एक कांसों के जंगल में कांसों के झाड़ों में हनुमानजी का नाम लेकर गांठ लगाता है क्योंकि ऐसा करने से मनोकामना पूर्ण होती है ऐसा उसके मामा वैद्यजी ने उसे समझाया था। (राग दरबारी, पृ० २३६) (१०) जब हवा न चलती हो तो इक्कीस पुरों के (नागपुर, कानपुर, मीरपुर आदि) नाम लेने से हवा चलने लगती है। यह हवा चलाने का एक टोटका है। (दिल एक सादा कागज़, पृ० ३८) (११) गांव के लोग नज़र या डीठ में भी खूब विश्वास रखते हैं। यह डीठ छोटे बच्चों और सुन्दर व्यक्तियों को अधिक लगती है। खाने-पीने की चीज़ों पर भी डीठ लगती है। 'नदी फिर बह चली' में उसका एक स्थान पर उल्लेख हुआ है। (नदी फिर बह चली , पृ० २२१)

तृतीय कोटि में मुस्लिम समाज से सम्बन्धित मान्यताएं आती हैं जिन्हें हम 'आधा गांव', 'काला जल', 'दिल एक सादा कागज़' प्रभृति उपन्यासों में लक्षित कर चुके हैं : (१) मुसलमान लोग मकड़ी को इज्जत देते हैं और गिरगिट को मारते हैं। वे मानते हैं कि गिरगिट को मारने से सबाब (पुण्य) मिलता है। उनमें एक कहानी प्रसिद्ध है कि उनके कोई पैगम्बर एक बार कहीं दुश्मनों में फंस गये थे तब मकड़ी ने उनके छिपने के स्थान पर जाला बनाकर उन्हें सहायता पहुंचायी

थी जबकि गिरगिट के कारण वे पकड़े गये थे। तभी से मुसलमान गिरगिट को अपना दुश्मन मानते हैं और उसे मारने में पुण्य समझते हैं। (काला जल, पृ० १७०),(२) मुसलमान गौरैया को भी मारते हैं क्योंकि वे उसे ब्राह्मण समझते हैं। (उपरिवत्, पृ० १८८), (३) मुसलमानों में एक ऐसी मान्यता प्रचलित है कि शबेबरात के दिन अपनी-बिरानी रूहें देहलीज़ पर इन्तज़ार करती हैं। (उपरिवत्, पृ० १६), (४) मुहर्रम में जिस घोड़े को सजाया जाता है उसे `दुलदुल` कहते हैं। लोगों में ऐसी मान्यता है कि एक बार जो घोड़ा दुल दुल बने वह फिर जी नहीं सकता, सूख-सूख कर दम तोड़ देता है। उपरिवत्, पृ० २५६), (५) मुस्लिम स्त्री समाज में ऐसी बातें प्रचारित की जाती हैं कि जो बीबी जीते-जी अपने खाविन्द की सेवा नहीं करती उसे जहन्नम की आग में जलना पड़ता है और जो बीबी अपने मियां के ऐबों पर पर्दा डालती है वह जन्नत में जाती है और सात हूरें उसकी खिदमत में मुकर्रर की जाती हैं। उनमें ऐसा भी कहा जाता है कि जो बच्चे बड़ों का कहना नहीं मानते उन पर भी जहन्नुम में कोड़े बरसते हैं। (दिल एक सादा कागज़, पृ० १२), (६) मुहर्रम में धनिया ~~भूनकर~~ और गरी भूनकर उसमें छालियां मिला ली जाती हैं क्योंकि उन दिनों पान नहीं खाया जाता। (आधा गांव, पृ० ५५), (७) ताज़िये के नीचे से छोटे बच्चों को निकालना बच्चों के लिए श्रेयस्कर माना जाता है। मुसलमान ही नहीं अन्य जाति की औरतें भी अपने बच्चों को ताज़िये के नीचे से निकालती हैं। (आधा गांव, पृ० ७४), (८) उनमें ऐसी भी एक मान्यता है कि मुहर्रम के समय की मन्नतें फलीभूत होती हैं। (आधा गांव, पृ० ७७), (९) वहाबी मुसलमान मन्नतें नहीं मान सकता। (आधा गांव, पृ० १०८), (१०) नायनें या नौकरानियां जब हिस्से बांटने निकलती हैं तो हिस्सा लेनेवाला उन्हें हिस्सा ले आने की मजदूरी -सी देता है जिसे `सिर-भारी` कहा जाता है। (आधा गांव, पृ० १३८), (११) किसी के मरने की खबर पाकर कुरआन की `इन्नालिल्लाह` नामक आयत पढ़ी जाती है जिसका अर्थ होता है `हर चीज़ अल्लाह से है और अल्लाह ही की तरफ लौट जायेगी।` (आधा गांव, पृ० १७३), (१२) आठ मोहर्रम को हंसने-वाले पर खुदा की फिटकार पड़ती है। (आधा गांव, पृ० २३४), (१३) मुसल-मानों में `नारए तकबीर` के जवाब में `अल्लाहो अकबर` कहा जाता है। (आधा गांव, पृ० ४४१), (१४) शीया लोग पहले तीन खलिफाओं को नहीं मानते। बहुत से सख्त शीया उन्हें गाली देना ज़रूरी मानते हैं। आम तौर से इसी को तबर्रा कहते हैं। (आधा गांव, पृ० ४८), (१५) शीया मुसलमानों में यह खयाल

आम है कि एक कश्मीरी ब्राह्मण कर्बला में शहीद हुआ था। इसीलिए इमाम मोहर्रम में यहाँ आते हैं। उस ब्राह्मण के खानदानवाले खुद को `हुसैनी ब्राह्मण` कहते हैं। (आधा गाँव, पृ० ६१), (१६) शीया मुसलमान मुसीबत के वक्त जो अरबी भाषा में जो दुआ पढ़ते हैं उसे `नादे-अली` कहा जाता है। (आधा गाँव , पृ० ६७), (१७) शीया मुसलमान रसूल का नाम नहीं लेते। उनकी बात करनी हो तो `आंहज़रत` यानी `वह जनाब` कहते हैं। (आधा गाँव, पृ० ८३), (१८) शीया घरानों में `तोहफ़तुल्अवाम` नामक एक किताब अवश्य रहती है जिसमें अच्छी-बुरी तारीखें, त्योहार, और धर्म की तमाम आवश्यक बातें संकलित की जाती है। (आधा गाँव, पृ० ११७), (१९) शीया औरतों की एक घरेलू लिपि भी होती है जिसे `इसतेलाही` कहा जाता है। (आधा गाँव, पृ० ११७), (२०) शीया औरतें कभी भूलकर भी अपने पति का नाम नहीं लेती, वैसे यह मान्यता भारत की अन्य अनेक जातियों में भी प्रचलित है। (आधा गाव, पृ० १६६), (२१) शीया धर्म यह मानता है कि रसूल के बाद बारह इमाम हुए जो मासूम होने से पाप कर ही नहीं सकते थे। (आधा गाँव, पृ० १९१), (२२) शीया-सय्यदों में किसी की माँ यदि निम्न जाति की हो उसे `दागी हड्डीवाला` कहा जाता है। (आधा गाँव, पृ० २४७), (२३) शीया मुसलमान यह मानते हैं कि रसूल के दामाद `अली` तमाम मुश्किलों को आसान करते हैं। इसलिए वे उन्हें `मुश्लिम कुशा` -- मुश्किलें दूर करनेवाला -- कहते हैं। (आधा गाँव, पृ० २७०) (२४) इमाम हुसैन के छोटे भाई को `छोटे हज़रत` कहा जाता है। शीया इनकी कसम खाते नहीं मगर जब खाते हैं तो पक्की खाते हैं। (आधा गाँव, पृ० २८१)

(च) <u>नगरीय परिवेश</u> : ग्राम एवं नगर के परिवेश में मूलग्राही अन्तर उपलब्ध होता है। हालांकि जीवन की सामान्य प्रवृत्तियां सभी स्थानों पर समान-सी मिलती हैं, तथापि परिवेश के कारण जीवन-रीतियों में परिवर्तन की सम्भावना को नकारना मुश्किल है। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् ग्राम नगराभिमुख हो रहे हैं। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, दिल्ली जैसे महानगरों में प्रतिदिन हज़ारों की संख्या में लोग रोजगार की तलाश में आते हैं, जिससे नगरों की समस्याएं विकट से विकटतम होती जा रही हैं। हमारी जीवन-प्रणाली अमरीकानुगामी हो रही है, परन्तु हमें उसके भावी दुष्परिणामों से सचिन्त रहना चाहिए। कुछ वर्षों के बाद अमरीका को पुन: गांवों की ओर लौटना पड़ेगा। पश्चिम के देश अब वायु-प्रदूषण ही नहीं, वरन् ध्वनि प्रदूषण से भी

चिन्तित हो रहे हैं। यहां हम संक्षेप में इतना कह सकते हैं कि आधुनिक युग में नगरीय जीवन के व्यामोह ने अनेक नवीन समस्याओं को जन्म दिया है।

'अन्धेरे बन्द कमरे', अन्तराल' (मोहन राकेश); 'बैसाखियोंवाली इमारत', 'अठारह सूरज के पौधे' (रमेश बक्षी); 'डाक बंगला', 'आगामी अतीत', 'तीसरा आदमी' (कमलेश्वर) ,; 'टेराकोटा, (लक्ष्मीकान्त वर्मा) ; 'यात्राएं' (गिरिराज किशोर) ; 'रेखा', 'प्रश्न और मरीचिका' (भगवतीचरण वर्मा) ; 'सीमाएं टूटती हैं (श्रीलाल शुक्ल) ; 'भीतर का घाव' (डा० देवराज) ; 'कड़ियां' (भीष्म साहनी) ; 'कृष्णकली (शिवानी) ; 'छाया मत छूना मन' (हिमांशु जोशी) ; 'पचपन खम्भे लाल दीवारें', 'रुकोगी नहीं राधिका?' (उषा प्रियंवदा) ; 'सूरजमुखी अन्धेरे के' (कृष्णा सोबती) ; 'महानगर की मीता' (रजनी पनिकर) ; 'मछली मरी हुई' (राजकमल चौधरी) ; 'एक चूहे की मौत' (बदी उज्जमां) ; 'मुरदा घर' (जगदम्बा प्रसाद दीक्षित) ; 'मुक्तिबोध' (जैनेन्द्रकुमार) ; 'आपका बण्टी' (मन्नू भण्डारी) ; 'अनदेखे अनजान पुल' (राजेन्द्र यादव) ; 'एक इंच मुस्कान' (राजेन्द्र यादव, मन्नू भण्डारी 'शहर में घूमता आईना' (अश्क) ;, 'एक टूटा हुआ आदमी' (जवाहरसिंह) ; 'नदी फिर बह चली' (हिमांशु श्रीवास्तव) ; 'दिल एक सादा कागज़' (डा० राही मासूम रज़ा) प्रभृति उपन्यासों में नगरीय जीवन की कुछ रेखाएं अंकित हुई हैं। अन्तिम तीन उपन्यासों में ग्रामीण और नगरीय यों दोनों प्रकार का परिवेश मिलता है।

पश्चिमी जीवन-प्रणाली का प्रभाव नगरों पर अधिक है। आधुनिक टेक्नोलोजी तथा विज्ञान की सुविधाएं भी नगर को ही अधिक सुलभ हैं। फिल्म तथा विदेशियों के कारण फैशन का प्रथम प्रभाव भी शहरों पर ही पड़ता है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार का अनुपात भी यहां गाँवों की तुलना में अधिक है। अध्ययन की सुविधा के लिए नगरीय परिवेश के निम्नलिखित पक्षों पर विचार किया जायेगा : (१) यान्त्रिक ज़िन्दगी, (२) टूटते-चहराते जीवन-मूल्य, (३) भौतिक समृद्धि की अन्धी दौड़, (४) आवास की समस्या, (५) बेकारी की समस्या, (६) उच्च समाज की रंगीनियां, (७) निम्न समाज का नरक, (८) मध्य-वर्ग की प्रदर्शन-प्रियता, (९) शहरों में पुलिस का अभिमान।, (१०) मनोवैज्ञानिक गुत्थियों का आधिक्य।

(१) <u>यान्त्रिक ज़िन्दगी</u> : शहरों में अधिकांश लोगों की ज़िन्दगी यन्त्र के पुर्जों के साथ बंधी हुई है। मशीन

के साथ मनुष्य भी उसका एक अंग हो गया है। बम्बई जैसे महानगरों में सड़कों पर लोग चलते नहीं दौड़ते हैं। नौकरी के अतिरिक्त आने-जाने में कई बार चार-पांच घण्टे खर्च होते हैं। कुछ लोग जागृत अवस्था में अपने बच्चों को केवल ~~छुट्टी~~ छुट्टी के दिन ही देख सकते हैं क्योंकि दोनों समय-- नौकरी जाते और नौकरी से आते -- वे सोये हुए होते हैं। महानगरों में नौकरीपेशा लोगों की ज़िन्दगी अति व्यस्त होती है। व्यस्तता मनुष्य को सुखी और स्वस्थ बनाती है, परन्तु यहां तो व्यस्तता के साथ 'टैन्शन' जुड़ा हुआ है। अत: बहुत हद तक व्यक्ति आत्म-केन्द्री और स्वार्थी हो जाता है। रमेश बक्षी के उपन्यास 'अठारह सूरज के पौधे' का नायक एक रेल्वे कर्मचारी है जिसने अपनी धड़कनों को रेल्वे की 'अप-डाउन' ट्रेनों से मिला दिया है। खाना-पीना-सोना-शौच आदि सब क्रियाएं ट्रेन में ही होती है। अत: यदि कभी किसी घर में खाना-पीना या शौच जाना पड़े तो उसे बड़ा ~~'अनइज़~~ 'अनइज़ी' महसूस होता है। 'अन्तराल', 'दिल एक सादा कागज़', 'मुरदा घर' प्रभृति उपन्यासों में भी मनुष्य के इस मशीनीकरण को बखूबी उकेरा गया है। जिस प्रकार बटन दबाने से मशीन चलती या बन्द होती है, उसी प्रकार यहां मनुष्य गोलियों के बटन से परिचालित होता है। बेचैनी है गोली, सर दर्द है गोली, सोने की गोली, जगने की गोली, बच्चे नहीं है गोली, बच्चे अधिक हैं गोली। उषा प्रियंवदा के उपन्यास 'रुकोगी नहीं राधिका ?' की नायिका भी इन गोलियों का शिकार है। मशीन का काम 'केल्क्युलेशन्स' पर चलता है, यहां का मनुष्य भी 'कैल्क्युलेशन्स' पर चलता है। यहां लोग कोशों की दूरी पर नहीं, पैसों की दूरी पर रहते हैं:, यथा --"क्योंकि वह जानता था कि प्रोड्यूसर का घर स्टेशन से एक रूपया बीस पैसे दूर है।"[१] यहां कई बार रात में सिगरेट पीने से पहले सोचना पड़ता है कि यह अकेली सिगरेट जो अभी पी ली तो सवेरे की चाय के बाद क्या होगा ?[२] तात्पर्य कि हर बात में 'कैलक्युलेशन्स' चलता है -- प्रेम और विवाह में भी।

(२) टूटते-महराते जीवन-मूल्य : गांवों में समय और स्थान दोनों की इफ़रात है, शहरों में दोनों की तंगी। अत: पहले का 'अतिथि देवो भव' अब 'अतिथि अदेवोभव' हो जाय तो क्या ताज्जुब ? गांव टूट रहे हैं, परिवार टूट रहे हैं। विभक्त परिवार उभर रहे हैं। अब परिवार का अर्थ ~~बब~~ बीबी-बच्चे से ही लिया जाता है। व्यक्ति सिमट

---

१. 'दिल एक सादा कागज़' : पृ. ६३ । २. वही : पृ. ७३ ।

रहा है। 'नदी फिर बह चली' का जगलाल इसका अच्छा उदाहरण है। शहर में रहकर वह इतना स्वार्थी हो गया है कि परबतिया जब उसे अपने बड़े भाई सुबलाल की आर्थिक सहायता करने के लिए कहती है तब वह दोनों के परिवार का हिसाब लेकर बैठता है। भाई के बच्चे अब अपने बच्चे नहीं माने जाते।

सम्बन्धों में जो बदलाव आया है उनके मूल में भावना के स्थान पर स्वार्थ घर करता जा रहा है। पहले जहां बेटी-दामाद का पानी भी हराम समझा जाता था, उसके स्थान पर आज कई बार सास-ससुर को दामाद पर निर्भर रहना पड़ता है, यथा कमलेश्वर के 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' में। 'छाया मत छूना मन' की नायिका वसुधा के 'स्टेप फादर' उसकी मां को अपने 'बोस' के साथ रात भर के लिए अकेले छोड़कर चले जाते हैं क्योंकि 'बोस' से उनके आर्थिक स्वार्थ जुड़े हुए हैं।[1] इसके बाद तो उसके यहां सदैव 'कीर्तन' चलता रहता है। वह अपनी लड़कियों, कंचन और वसुधा को, भी कमाने के लिए उकसाती है: 'अरी मरजानी, तुझ से कुछ क्यों होगा ? जिसे दो वक्त पेट में ठूंसने को रोटियां मिल जायं, वह क्यों करे मिहनत। देख न सामने वैद के घर नौ-नौ सौ रुपये महीने आ रहे हैं। तीनों लड़कियां हैं, तीनों क्या कर रही हैं।'[2] जहां किसी सांस्कृतिक कार्यक्रम में भी लड़कियों को भेजने से भी मां-बाप कतराते थे और लड़कियों का अभिनय भी लड़कों को करना पड़ता था वहां अब 'छाया मत छूना मन' की परबीन अपनी बेटी कंचन को कैबरे नृत्य के लिए छूट देती है क्योंकि उसमें 'आजकल बहुत पैसे मिलते हैं।'[3] बेटी की कमाई अब बाप को लेनी पड़ती है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' और 'टैराकोटा' दोनों में इस परिवर्तित परिस्थिति के दर्द को उकेरने का प्रयास हुआ है।

श्रीलाल शुक्ल के 'सीमाएं टूटती हैं' का सैंतालीस वर्षीय अविवाहित विमल सलूजा अपने ही मित्र दुर्गादास की तेईस वर्षीय पुत्री चांद को प्रेम करने लगता है। पुराने मूल्यों के हिसाब से मित्र-पुत्री पुत्रीवत् ही मानी जायेगी। 'रेखा' की मिसेज चावला अपनी पुत्री के 'फिआन्सी' से ही प्रेम करने लगती है। इसी उपन्यास में ही एक सज्जन अपनी गुरु-पत्नी (रेखा) पर ही डोरे डालने लगते हैं।

---

१. 'छाया मत छूना मन' : पृ० २० । २. वही : पृ० ३ । ३. वही : पृ० ७ ।

गुरु-शिष्या के शारीरिक एवं वैवाहिक सम्बन्ध अब सहज होते जा रहे हैं। भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास में विश्वविद्यालय के आंतरराष्ट्रीय ख्याति के विद्वान् प्रोफेसर प्रभाशंकर अपनी एम० ए० फाइनल की छात्रा रेखा भारद्वाज से पहले प्रणय और बाद में परिणय सूत्र में बन्धते हैं। 'एक टूटा हुआ आदमी' का धर्मनाथ किशोरीलाल नामक एक श्रीमन्त के यहां उनकी दो लड़कियाँ पुष्पा और नीलिमा को ट्यूशन देने जाता है और दोनों को प्रेम करने लगता है। दोनों में तुलना करते हुए वह सोचता है कि 'एक गंगा की तरह शान्त है तो दूसरी जेलम की तरह अल्हड़।'[१]

पहले बहन शब्द का एक भावनात्मक मूल्य था। आजकल शहरों में अपनी वासना-पूर्ति हेतु बहन बनाने का एक फैशन-सा चल पड़ा है। बहनों की शारीरिक कमाई पर अब भाई पढ़ते हैं और फैशन करते घूमते हैं।[२] 'बहन' शब्द का तो इतना अवमूल्यन हुआ है कि बम्बई की फिल्म इण्डस्ट्री में 'बहन' का अर्थ रखैल होता है।[३] निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि नगरीय परिवेश में अब पुराने मूल्य चरमरा रहे हैं।

(३) भौतिक समृद्धि की अन्धी दौड़ : फिल्मों में प्रदर्शित वैभवी जीवन के प्रभावस्वरूप लोगों में रातोंरात धनवान हो जाने की एक हवस-सी पैदा हो गयी है। फलत: जायज-नाजायज कैसे भी काम करके वे भौतिक दृष्टि से संपन्न हो जाना चाहते हैं। 'प्रश्न और मरीचिका' की रूपा आण्टी जो एक प्रसिद्ध नेता की पत्नी है, रामकुमार गाबड़िया एक नौजवान व्यापारी से रूपये हथियाने के लिए एक रात होटल में उसके साथ सोती है। कमलेश्वर के उपन्यास 'आगामी अतीत' का थीम ही भौतिक समृद्धि की स्पर्द्धा पर आधारित है। डा० कमल बोस की आँखें भौतिक समृद्धि की रोशनी से इतनी चौंधिया जाती है कि वह अपने परिवेश से ही नहीं कटते, अपने आदर्शों से भी कट जाते हैं। 'प्रश्न और मरीचिका' में एक स्थान पर अमेरीकी संपन्नता का बड़ा बीभत्स चित्र मिलता है। सोफी के कथनानुसार वहां लोगों के पास मकान, कार, फर्नीचर आदि सब होता है, किन्तु कर्ज पर लिया हुआ

---

१. 'एक टूटा हुआ आदमी' : पृ० ४४६। २. 'नदी फिर बह चली' : पृ० २९९-३००। ३. 'दिल एक सादा कागज' : "छोटी हिरोइन बड़ी खूबसूरत थी। न होती तो मजले प्रोड्यूसर ने उसे अपनी 'बहन' ही क्यों बनाया होता? બહન યાની રખૈલ।" , પૃ. ૬૩।

जिनकी किश्तों को चुकाने के लिए स्त्री-पुरुष दोनों को नौकरी करनी पड़ती है। कई बार इस नौकरी के दौर में विवशतावश दूसरे के साथ सोना भी पड़ता है।[1]

(४) आवास की समस्या : आवास की समस्या शहरों की सबसे विकट समस्या है। गुजराती में कहावत है : `शहरमां रोटलो मले, पण ओटलो न मले।` अर्थात् शहर में रोटी मिल सकती है, पर रहने का स्थान नहीं। `अठारह सूरज के पौधे` में बम्बई में मकान के लिए दी जानेवाली `पघड़ी` की समस्या का निरूपण रमेश बक्षी ने किया है। उसका नायक घर के अभाव में किराये की खाट पर सोता है। बम्बई में बहुत से लोग फूटपाथ, पाइपों तथा स्लमों में कीड़े-मकोड़ों की तरह रहते हैं। जगदम्बाप्रसाद दीक्षित के उपन्यास `मुरदा घर` में बम्बई की इस दुनिया का निरूपण भलीभांति हुआ है। कमलेश्वर के `तीसरा आदमी` की समस्या के मूल में भी आवास की समस्या है। उपन्यास का नायक अपनी पत्नी के साथ दिल्ली की एक अन्धेरी गली के एक छोटे से कमरे में अपने ममेरे भाई के साथ रहता है। दिल्ली में मकान न मिलने के कारण ही उसे अपने ममेरे भाई के साथ रहना पड़ता है जहां उनके दाम्पत्य जीवन की दीवारों को आशंका की घुन लगने लगती है और अन्तत: वे दीवारें ही ढह जाती हैं। ऐसा नहीं कि शहरों में मकान नहीं मिलते। ड्राइंग रूम, कीचन, ~~बाथ-रूम, बेडेड-बे~~ बाथ-रूम एटेच्ड् बेडरूम, स्टोर रूम आदि सुविधाओं सहित मकान मिलते हैं, पर किराया इतना होता है कि उसे देने के बाद शायद मध्य-वर्ग के व्यक्ति को किचन-विचन की आवश्यकता ही न रहे।

(५) बेकारी की समस्या : आवास की भांति नौकरी की समस्या भी शहरी जीवन की एक प्रमुख समस्या है, क्योंकि स्थायी नौकरी ही मध्य-वर्ग की एक मात्र सम्पत्ति है। इस समस्या के उत्स में प्रतिदिन बढ़ती आबादी तथा शिक्षितों की `वाइट कालर` रहने की मनोवृत्ति भी है। शहर की भौतिक सुविधाओं तथा ताम-झाम को छोड़कर लोग गांवों में जाना नहीं चाहते। फलत: शिक्षित बेकारों की समस्या में निरन्तर अभिवृद्धि हो रही है। `अन्धेरे बन्द कमरे`, `टेराकोटा`, `एक टूटा हुआ आदमी` `कृष्णकली`, `डाक बंगला` `शहर में घूमता हुआ आईना`, `एक चूहे की मौत` आदि उपन्यासों में इस समस्या के विषैले प्रभावों को चित्रित किया गया है। बेकारी

---

१. `प्रश्न और मरीचिका` : पृ० २८८-२८६।

के कारण लोगों का आर्थिक व नैतिक शोषण भी होता है। ज्यादा वेतन पर सही करवाकर कम वेतन दिया जाता है। महिलाओं को नौकरी के लिए कई बार नैतिक मूल्यों का बलिदान करना पड़ता है। `पचपन खम्भे लाल दीवारें` की सुषमा या `टेराकोटा` की मिति जैसी कुछ ही महिलाओं को सम्मान की नौकरी मिलती है। अधिकांशत: उन्हें अपने स्थानों को सुरक्षित रखने के लिए पुरुष की काम-डोरी से संचालित होना ही पड़ता है। `डाक बंगला` की इरा को मि० बतरा की अंक शायिनी होना पड़ता है। `कृष्णकली` की वाणी सेन को भी स्कूल में अध्यापिका होने के कारण स्कूल के मैनेजर रजनीकान्त मित्रा की `भतीजी` बनकर उसकी काम-वासना का शिकार होना पड़ता है। लड़कियों को नौकरियों के लि लिए किस प्रकार बहकाया-फुसल या जाता है, किस प्रकार उनके न्यूड फोटो खींचे जाते हैं, किस प्रकार उनसे `ब्ल्यू फिल्मों` में काम करवाया जाता है आदि बातों का चित्रण `छाया मत छूना मन` में खूबी हुआ है।

(६) उच्च समाज की रंगीनियाँ: कई बार सोचने पर लगता है कि हमारे यहां दो प्रकार के वर्ग हैं -- आरक्षित एवं अरक्षित। प्रथम वर्ग की जन्म से मृत्यु पर्यन्त की सभी बातें आरक्षित होती है और दूसरे वर्ग की अ सभी अरक्षित। यह आरक्षित वर्ग वैभवी जीवन की रंगीनियों से लबालब भरा हुआ है। `सीमाएं टूटती हैं`, `दिल एक सादा कागज़`, `डाक बंगला`, `प्रश्न और मरीचिका`, `रखा`, `सूरज मुखी अन्धेरे के`, `अन्धेरे बन्द कमरे`, `एक चूहे की मौत`, `मछली मरी हुई` `छाया मत छूना मन`, `मुक्तिबोध`, `किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई` प्रभृति उपन्यासों में इस रंगिन वर्ग की रंगीन बातों को उकेरा गया गया है।

उच्च व्यावसायिक वर्ग के लोग, राजा-महाराजा, उच्च राजनीतिक वर्ग (आधुनिक राजे-महाराजे), तथा उच्च वर्ग के सरकारी अधिकारियों से यह वर्ग बनता है। डीनर पार्टियां, कॉकटेल पार्टियाँ, नाइट क्लब, कैबरे, ब्ल्यू फिल्म, कॉल गर्ल आदि में उनकी दुनिया आबाद है। इन पार्टियों में विदेशी शराब की नदियां बहती हैं। `एक चूहे की मौत` में उच्च अधिकारियों की रंगीन सोसायटियों का पर्दाफाश किया गया है। महानगरों के उच्च समाज में `की क्लब` चलते हैं। क्लब के सभी सदस्य अपनी पत्नियों अ या प्रेमिकाओं को लेकर आते हैं। सब अपनी-अपनी गाड़ियों की चाबियां एक तश्त में रख देते हैं। उस पर

एक कपड़ा ढक लिया जाता है। फिर सभी सदस्य एक-एक करके चाबी उठा लेते हैं। जिसके हाथ में जिसकी चाबी आवे उसकी पत्नी को लेकर सभी अलग-अलग कमरों में चले जाते हैं।[1]

कई बार अधिकारियों से काम निकलवाने के लिए उन्हें महंगी होटलों में ठहराया जाता है, जहां उन्हें हर प्रकार के ऐशोआराम के साधन उपलब्ध कराये जाते हैं। 'नदी फिर बह चली' में एक उच्च अधिकारी ऐसे ही होटल में ठहराया जाता है। खाने-पीने के बाद, उसके यह कहने पर कि 'हमारे लिए जो चीज़ मंगायी है उसे पेश किया जाय', उसके कमरे में एक रूप-सुन्दरी को भेज दिया जाता है। आश्चर्य की बात कि वह युवती उस अधिकारी की ही पत्नी थी। होटल के अधिकारियों से जवाब तलब करने पर उन्होंने बताया कि वह युवती पिछले दो-तीन महीनों से इस पेशे में है।[2] 'कांचघर' में तमाशा की परमिशन के लिए जिला अधिकारी के पास 'तमाशा' की एक रूप-सुन्दरी को भेजा जाता है। 'मछली मरी हुई' की कल्याणी काल गर्ल का काम करती है। डाक बंगला के मि० बतरा का व्यवसाय ही सरकारी अधिकारियों से मिलकर लोगों का तथा अपना काम बनाना है। किसी को परमीट दिलाना, किसी को 'वीसा' दिलाना, किसी का पासपोर्ट बनाना, किसी को 'इम्पोर्ट' की सुविधाएं दिलाना, किसी को 'डिसपोज़ल' का सामान सस्ते में दिला देना — और इसके लिए प्रत्येक की नब्ज़ को वह भली भांति जानता है। पचास हजार के नीचे का काम करना वह अपनी तौहीन समझता है। किसी भी महीने उसकी आमदनी आठ-दस हजार से कम नहीं रहती थी।[3] 'प्रश्न और मरीचिका' में व्यवसायी लोगों के अपने मातहत में काम करनेवाली सुन्दर युवतियों के साथ के शारीरिक सम्बन्धों को चित्रित किया गया है। 'मुक्तिबोध' के सहायबाबू एक उच्च वर्ग के राजनीतिज्ञ हैं। नीलिमा नामक एक अल्ट्रा माडर्न एवं अनिन्द्य सुन्दरी से उनके सम्बन्ध हैं। नीलिमा के पति ने उसे हर प्रकार की छूट दे रखी है क्योंकि वह भी उसी छूट से लाभान्वित होता है। दूसरे नीलिमा का आकर्षक व्यक्तित्व उसकी सफल व्यावसायिक ज़िन्दगी के लिए आवश्यक भी है। 'कृष्णकली' का विद्युतरंजन एक छोटी-सी रियासत का राजा तथा राजनीतिज्ञ व्यक्ति है। पन्ना नामक एक उच्च-वर्गीय वारांगना से उनके सम्बन्ध हैं। 'छाया मत छूना मन' की वसुधा को चार-पांच हजार रुपये कर्ज में पाने के लिए आफिस के एक अधिकारी मि० चावला के साथ सिमला चार

---

१. 'एक चूहे की मौत' : पृ. ८८। २. 'नदी फिर बह चली' : पृ. ३०४-३०५।
३. 'डाक बंगला' : पृ. ५२-५३

रातें रहना पड़ता है। इसी उपन्यास में उच्च-वर्ग के एक अनन्य शौक - ब्ल्यू फिल्म - का जिक्र भी आया है। किसी प्राइवेट हाल में प्राइवेट प्रोजैक्टर पर गिने-चुने लोगों के साथ यह फिल्में देखी जाती हैं। प्रस्तुत उपन्यास में जिस 'ब्ल्यू फिल्म का वर्णन है वह सम्भोग करते हुए तरुणों की थी।[१] विदेशों में कहीं कहीं तो नाइटमैयरों' में वास्तविक सम्भोग या बलात्कार के दृश्य दिखाये जाते हैं। पूर्ववर्ती पृष्ठों में 'अन्धेरे बन्द कमरे' में वर्णित 'पोर्ट सइद' के एक 'नाइट मैयर' का उल्लेख किया गया है जिसमें कोई नीग्रो युवक किसी चीनी या जापानी लड़की के साथ बलात्कार करता है।

शैलेश मटियानी कृत 'किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई' में लेखक ने बम्बई के भद्र-वर्ग के आन्तरिक व नैतिक खोखलापन को बखूबी चित्रित किया है। सेठानी नर्मदाबेन की वासना-पूर्ति सेठ नगीनदास नहीं कर सकते। पर इसका बड़ा 'सोफिस्टीकेटेड' तरीका सेठानीजी ने ढूढ निकाला है। धर्मशाला, अनाथालय, मन्दिर, स्कूल आदि में व्यवस्थापक, पुजारी व प्रिंसिपल की नियुक्ति सेठानीजी करती हैं। इसके अतिरिक्त सेठों के संरक्षण में होनेवाले 'कवि-सम्मेलनों' से भी वह यथेच्छ 'शिकार' को फंसा लेती हैं।

(७) <u>निम्न-समाज का नरक</u> : महानगर के स्लम तथा गन्दी बस्तियों का जीवन पृथ्वी पर का जीता-जागता नरक है। 'नदी फिर बह चली', एक टूटा हुआ आदमी' तथा 'मुरदाघर' में बम्बई की झोंपड़पट्टी में एक-दो रुपये में, शराब की प्याली में शरीर को बेचनेवाली वेश्याओं के संसार को तटस्थ्य के साथ उभारा है। होटल के उच्छिष्ट कचरे पर पलनेवाले बच्चे यहां गुण्डों, छोटे-मोटे दादाओं, शराबियों, वेश्या के दलालों, शराब बेचनेवालों, वर्ली मटकावालों तथा दाणचोरों के आश्रय में जिन्दगी के पाठ पढ़ते हैं। न्याय की काली अन्धी सुरंगों जैसी पाइपों में यहां नवजात शिशु आंखें खोलता है। रक्तपिपासुओं के इस संसार में एक और-मवालीपन की वृद्धि होती है।

'नदी फिर बह चली' में पटना की गन्दी खोलियों में चलनेवाली सस्ती वेश्यागिरी का जीवन्त चित्रण मिलता है। यहां 'कमलवा' ही

---

१. देखिए : 'छाया मत छूना मन' : पृ० ५७।

चाहे 'सरदावा', हर 'माल' दो रूपये चार आने'[1] मिलता है। पुआल पर टाट और तकिये के बदले में हर बिछावन पर एक-एक ईंट। रात होती है तो माटी के बने ताखे पर माटी का दीया जल जाता है। सुबह से रात के दस बजे तक यह काम चलता रहता है।[2]

इतना ही नहीं यहां गृहस्थिन औरतें भी फांस पर चलती हैं। दस बजे रात को दलाल ले जाता है और भोर होते ही पहुंचा जाता है।[3]

(८) मध्य-वर्ग की प्रदर्शन-प्रियता : निम्न वर्ग और उच्च वर्ग दोनों उन्मुक्त हैं। दोनों नंगे हैं, एक का नंगापन मजबूर और मगलूब है तो दूसरे का स्वैच्छिक और मगरूर। सामाजिक मर्यादाओं का उत्तरदायित्व इन पर नहीं है। जबकि मध्य-वर्ग वर्जनाओं की श्रृंखलाओं से आबद्ध है। बुर्जुआ समाज की सारी परम्पराओं को अपने गले में डालकर वह घूम रहा है। अतः वह कुंठित है। प्रदर्शन-प्रियता इसी कुण्ठा का परिणाम है। 'रुकोगी नहीं राधिका ?' में राधिका की भाभी ~~को~~- राधिका को अपने साथ इसलिए ले जाती है कि 'फारीन रिटर्न' ननद से उसका 'सोसियल स्टेटस' बढ़ता है। 'दिल एक सादा कागज़' में रज़ा ने भी इसी वृत्ति का मखौल उड़ाया है। अपने आपको प्रगतिशीलों में खपाने के लिए लोगों का 'बीफ' खाना या किसी पुस्तक-विशेष की ~~चर्च~~- चर्चा सुनते ही रातोंरात उसे अपने पुस्तकालय में ला देना भी प्रदर्शन-वृत्ति का परिचायक है।

(९) शहरों में पुलिस का अभिनाम : जिस प्रकार गांवों की फौजदारियां पुलिस के सहयोग से चलती हैं, उसी प्रकार शहर के सारे गोरखधन्धे भी पुलिस की जानकारी में पुलिस की सहायता से चलते हैं। 'नदी फिर बह चली' में जगलाल कहता है : "दलाल जो कमाता है उसमें उन्हें (पुलिस को) भी हिस्सा देता है। आदमी पैसे खर्च करे, तो पुलिस की नाक पर खून हो सकता है, पुलिस की नाक पर रण्डी-खाना चल सकता है।... इस पटने में कई ऐसे होटल हैं, जहां लड़कियां मिलती हैं। दस बजे रात को वे होटलों में चली आती हैं और सुबह चली जाती हैं। क्या पुलिसवाले यह सब नहीं जानते ? उसमें भी बड़े-बड़े घर की बेटियां, एफ० ए० बी०ए० पास।"[4] 'मुरदाघर' में पुलिस की नीतियों का पर्दाफाश हुआ है।

१. 'नदी फिर बह चली' : पृ. २७४। २. वही: पृ. २७४। ३. वही: पृ. २८०। ४. वही: पृ. २२५-२२६।

हीरा नामक एक वैश्या उसमें कहती है : " पोलिस लोक का धाडु हाएंगा आज फिर ... कइसा मालम पड़ा तेरेकू ?... वो दारूवाला किस्तयुया और वो मटकावाला ... दोनों चले गया इधर से । किस्तयुया दारू का सब पोंपा हटा दिया । मटका वाला भी अपना कागद-वागद ले के चले गया । ... ये साला लोक पोलिस लोक कू हंता देता ना । वो इनकू पैला से बोलके रखता ।"[१] इसी उपन्यास का नत्थू जब्बार से कहता है : " मैं सब लोक कू ये ई बोलता ... किधर भी चोरी करना ... पन इस्मगलर ... दारूवाला ... रण्डीवाला ... इधर कभी भूल के भी नई जाने का । नई तो पोलिस जान ले डालेंगा मार मारके । कभी नहीं छोडेंगा । कायकू ? अरे तेरे कू मालम तो है कि कायकू नई छोडेंगा । सारा पोलिस खाता इधर से च चलता ।"[२] गोया पुलिस का काम इन्हीं को रक्षण देना है ।

(१०) मनोवैज्ञानिक गुत्थियोंका आधिक्य : गांवों की तुलना में शहरों में उन्मुक्त कुदरती वातावरण की कमी रहती है । शिक्षा का प्रचार-प्रसार भी यहां अधिक मिलता है । अत: यहां ' मैन इन एक्शन ' की तुलना ' मैन इन थोट ' का वातावरण अधिक है । फलत: मनोवैज्ञानिक ग्रन्थियों या गुत्थियों का यहाँ आधिक्य रहता है । यहां भी मेहनतकश लोगों में मनोवैज्ञानिक ग्रन्थियों का अभाव मिलता है । यह सोचने की बीमारी बुद्धिजीवी किंवा परोपजीवी लोगों में ही बहुतायत से मिलती है । परिणामत: मानसिक संत्रास, पीड़ा, एवं घुटन के वे शिकार होते हैं । गांवों में कोई बाल-बच्चेवाला व्यक्ति यदि बड़ी उम्र में विवाह करता है तो उसकी बेटी भी उस प्रसंग में शामिल होती है, या अधिक से अधिक रो-धो के चुप हो जाती है जबकि ' रुकोगी नहीं राधिका ? ' की राधिका का जीवन तो इस प्रसंग से धुरीहीन होकर गड़बड़ा जाता है और विदेशी पत्रकार के साथ वह अमेरीका चली जाती है । शिक्षित स्त्री-पुरुषों में अहं का प्राधान्य मिलता है । परस्पर के ' अहं ' की टकराहट से कई बार उनका दाम्पत्य-जीवन खण्डित हो जाता है । ' आपका बण्टी ' के अजय और शकुन तथा ' अन्धेरे बन्द कमरे ' के हरबंस और नीलिमा इसके उदाहरण हैं । पूर्ववर्ती पृष्ठों में निर्दिष्ट किया जा चुका है कि शिक्षित लोग प्राय: आत्म-केन्द्री होने से स्वार्थी होते हैं । यहां विवाह भी उन्नति के शिखर की एक सीढ़ी बनकर रह जाता है । ' महा नगर ~~की मैकित में~~

---

१. ' मुरदा घर ' : पृ० ४४६ । २. ' वही : पृ० १७६ ।

की मीता' में उसका नायक मीता की नौकरी के सहारे डाक्टर हो जाता है, परन्तु डाक्टर होते ही उसे सीढ़ी की आवश्यकता नहीं रहती। परिणामत: दोनों में तलाक होता है। गांवोंमें लोग भाग्यवादी अधिक होते हैं, अत: दूसरे की उन्नति क से उनमें ल हीनता-ग्रन्थि का विकास बहुत कम होपाता है। 'शहर में घूमता आईना' का चेतन हीनता-ग्रन्थि का शिकार है। गांवों में प्राय: लड़कियों की शादी सत्रह-अठारह वर्ष में हो जाती है। उन्हें अधिक पढ़ाया भी नहीं जाता। अत: अविवाहित शिक्षित महिलाओं की कुण्ठाएं वहां नहीं मिलती। 'टैराकोटा' की गिति तथा 'पचपन खम्भे लाल दीवारें की सुषमा की मानसिक घुटन व संत्रास नगरीय परिवेश का परिणाम है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि मनोवैज्ञानिक गुत्थियां नगरीय परिवेश के शिक्षित व उच्च समाज में अधिकांशत: मिलती हैं।

अध्याय के समग्रावलोकन से यह निष्कर्ष निकलता है कि उपन्यास के वस्तु-संगठन एवं चरित्र-सृष्टि की दृष्टि से परिवेश का तत्व उपन्यास का एक अपरिहार्य अंग है। वह चरित्र और स्थितियों को जन्म देता है। वस्तु एवं चरित्र की विश्वसनीयता में अभिवृद्धि परिवेश के द्वारा ही सम्भव है। साठोत्तरी उपन्यास के परिवेश पर एक विहंगम दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि उसके परिवेश में व्यापकता आयी है और कहीं कहीं उपन्यासकारों ने नयी ज़मीनों को तोड़ने का प्रयत्न भी किया है। उसमें एकांगिता नहीं है। भारतीय मानस की समस्त चेतना उसमें उजागर हुई है। ग्रामीण एवं नगरीय जीवन के बहुआयामी पक्षों को कुशलता से अंकित किया गया है कि भारतीय जन-मानस का एक मानक सांस्कृतिक चित्र समुपस्थित हुआ है। सच पूछा जाय तो परिवेश की यह विश्वसनीयता ही साठोत्तरी उपन्यासों को एक नयी अर्थवत्ता प्रदान कर उसे आधुनिक जीवन की बहुआयामी एवं जटिल चेतना से सन्दर्भित कर देती है।